# बुनियादी शिक्षा

## एक नई कोशिश

अगस्त–नवम्बर–2010

अंक – 28

# बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

## अंक–28


**परामर्श**
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

**संपादक मण्डल**
भागचंद्र कुमावत
वि.वि. सिंह
कुमार अनुपम

**सलाहकार**
एम.पी. शर्मा
गोविन्द रावल
भरत जोशी

**चित्रांकन**
प्रशांत सोनी

**कंप्यूटर सेटिंग**
इसरार अहमद

**टाइपिंग सहयोग**
शाकिर अहमद



**संपादकीय पता**
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsadr@yahoo.com


## इस अंक में


| | |
|---|---|
| संपादकीय | 1 |
| आज के संदर्भ में बुनियादी शिक्षा को समझना<br>**हृदय कांत दीवान** | 3 |
| नई तालीम पुनः सशक्तिकरण, केन्द्राभिमुखिकरण और क्रियान्विति<br>**भागचन्द कुमावत** | 16 |
| जरूरी है शिक्षा को भावनाओं से जोड़ना<br>**वि.वि. सिंह** | 27 |
| क्या–क्या गिना! क्या नहीं गिना!!<br>**ज्योतिभाई देसाई** | 29 |
| महात्मा गांधी और शिक्षा<br>**ज्ञान प्रकाश मिश्र** | 34 |
| बच्चों ने बनाया नक्शा<br>**महाराज बी.के.** | 44 |
| बुनियादी शिक्षा : विज्ञान और अध्यात्म में समन्वय<br>**दयाल चंद सोनी** | 48 |
| गतिविधि का नमूना | 52 |



इस अंक की सहयोग राशि व्यक्तिगत : 30 रुपए, वार्षिक– 120/– रुपए तथा संस्थागत वार्षिक सहयोग राशि 250/–रुपए
चेक/ड्राफ्ट – विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं।

सौजन्य : राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद्, हैदराबाद

# संपादकीय

बुनियादी शिक्षा केन्द्रीकृत स्कूली शिक्षा की विकृतियों के संदर्भ में ऐसा विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयास था, जो समाज में विद्यमान विविधता को शाला में जगह देना चाहता था। वह, जिस समाज के बच्चे शाला में आ रहे हैं उसके अनुभव को शाला में शामिल करना चाहता था। वह, समाज व बच्चों की भाषा व उनके स्वाभिमान के लिए जगह बनाना चाहता था। वह, यह भी मानता था कि सभी बच्चों को कोई न कोई हुनर सीखना चाहिए व उनमें श्रम की इज्ज़त करने की भावना आनी चाहिए। शिक्षा के इस दर्शन के कई स्वरूप थे व इसके प्रवक्ता इसमें कई अलग–अलग तत्व भी जोड़ते थे। इन तत्वों में कई जड़ थे और कुछेक जीवन्त भी। बुनियादी शिक्षा का दर्शन मूलतः एक बड़ी शिक्षा व्यवस्था के सामने एक ऐसी चुनौती प्रस्तुत करता था, जो लोगों की वैचारिक स्वतंत्रता व उसकी अभिव्यक्ति के लिए जगह तलाशती थी। शिक्षा की महत्ता इसलिए है क्योंकि वह हाशियों पर रहने वाले लोगों को अपनी बात कहने का अवसर देगी न कि इसलिए कि वह उन्हें स्वयं को और उनकी संस्कृति को मुख्यधारा में गुम होने के लिए प्रेरित करे।

शिक्षा किसे माने और उसका क्या लक्ष्य होना चाहिए? एक स्वाभाविक परिस्थिति, जिसमें बहुलता का होना निश्चित है, अपने लिए किस प्रकार की शिक्षा के बारे में सोचे व उसका ढांचा कैसा हो? यह भी प्रश्न है कि उसमें भूमिकाएं किस प्रकार तय की जाएं?

बुनियादी शिक्षा द्वारा प्रस्तुत ये अहम प्रश्न विलुप्त तो नहीं हुए हैं, किन्तु कहीं दब गए हैं। अभी भी शिक्षा के समाज पर प्रभाव, विभिन्न समुदायों की शैली के लिए इसके केन्द्रीकृत ढांचे में जगह आदि अनेक प्रकार के सवाल पर उभर आते हैं। शिक्षा देने की ज़िम्मेदारी शासन व सरकार की मानते ही उसमें विभिन्न लोगों की भागीदारी व उनकी जगह घटती जाती है। जब कुछ लोग ढांचों का स्वरूप, क्या पढ़ाया जाए, कैसे पढ़ाया जाए यह सब कुछ सोच समझकर, किन्तु सब अपने हिसाब से तय कर देते हैं तो संवाद बंद हो जाता है। समाज में विचारों को समझने की प्रक्रिया संवाद से ही होती है और किसी के लिए भी यह कहना बड़बोलापन होगा कि वे जानते हैं कि क्या करना है और कैसे करना है। समाज में विकास व बदलाव विचारों के प्रस्फुटन से व लगातार सोचने व खोजबीन से होता है। यही प्रक्रिया हमें शिक्षित भी करती है। कानून बना कर शिक्षा की प्रक्रिया व उसकी महत्ता थोपी नहीं जा सकती। ऐसी प्रक्रियाएं उपयोगी दिखने के बावजूद लोगों की प्रेरणा व जोश को कुंठित करती हैं।

राज्य के शिक्षा के पूरे काम को अपने हाथ में ले लेने व उसे केन्द्रीकृत करने के साथ–साथ ही बहुत सी प्रक्रियाएं सशक्त हुई हैं, जो विविधता व अलग–अलग तरह के ज्ञान को नकारती हैं। जहां हर प्रकार के

ज्ञान को सही मानना व उपयोग करना उचित नही है। वहीं यह भी उचित नहीं है कि ज्ञान क्या है और उसे गढ़ने के सारे रास्ते आम लोगों के दायरे से विलुप्त हो जाएं व कुछ विशिष्ट विशेषज्ञों की बपौती बन जाएं। इन सब प्रक्रियाओं में संतुलन की ज़रूरत है।

बुनियादी शिक्षा पर हुए हाल के राष्ट्रीय सम्मेलन में कई बातें सामने आईं। यह स्पष्ट था कि कई लोग तो यह समझते हैं कि यह दर्शन 1930 में ही स्थित है और इसलिए यह पुराना भी है और अनुपयोगी भी। दुनिया इससे बहुत आगे बढ़ गई है और इसलिए यह प्रायः उपयोगी नहीं है। आज टैक्नालॉजी का जमाना हैं, ज्ञान सोसायटी का ज़माना है, उसमें कहां हुनर की बात, कहां इन्सानों के शारीरिक श्रम के महत्त्व की बात आती है। हालांकि गांधी जी के नाम को सब इज्ज़त देते हैं और उन्ही से शुरू करते हैं फिर भी उनके लिए इस शिक्षा दर्शन के प्रमुख हिस्से मृत ही हैं। कुछ ऐसे लोग है, जो यह मानते हैं कि बुनियादी शिक्षा को हूबहू वैसे ही स्थापित करने की आवश्यकता है जैसी 80–90 साल पहले की कल्पना थी। हमारी राय में बुनियादी शिक्षा की प्रमुख ताकत यह नहीं है कि उसमें कौन से हुनर का उपयोग हो और कौन का नहीं। यह ताकत इसमें है कि यह शिक्षा की प्रक्रिया को गढ़ने की ज़िम्मेदारी को प्रजातांत्रिक भूमिका व अधिकार का हिस्सा मानती है और समाज में वैवध्य व स्वैच्छिक जोश को उसकी जीवन्तता के लिए अनिवार्य मानती है। यह अपेक्षा करती है कि समुदाय की व समाज के अन्य लोगों की बच्चों को स्कूल तक पहुंचाने से अधिक भूमिका हो। वे सिर्फ गडरिये न हों और न ही सिर्फ़ ईंट गारे के मज़दूर अथवा कांट्रैक्टर जो भवन निर्माण करवा सकें। स्कूल जितना उनका होगा और जितना उसमें उनका योगदान होगा उतना ही वे उसे चला पाएंगे। बुनियादी शिक्षा के दर्शन में ऐसे समाज की परिभाषा में सिर्फ़ वे लोग नहीं हैं, जो वहां रहते हैं पर वे लोग भी हैं, जो अपने विश्वास व प्रेरणा के कारण समाज के साथ लगना चाहते हैं। इस प्रेरणा की मंशा पर सवाल पूछना बेमानी है, क्योंकि केन्द्रीकृत ढांचे के माध्यम में पहुंचे लोगों की मंशा पर ज़्यादा बड़े सवाल उठ सकते हैं। सम्मेलन में एक जो बड़ा सवाल उठा वह यही था कि क्या हम स्वप्रेरणा, स्वैच्छिकता, वैकल्पिक ढांचों व खोजों को बंद कर एक एकात्मक ढांचा खड़ा करना अच्छा मानते हैं।

क्या हम ऐसे सब प्रयासों को बंद करना चाहते हैं, जो छोटे हैं, मध्यम हैं और कुछेक अपेक्षाकृत बड़े भी हैं जो नये रास्ते खोज रहे हैं। और इन सब को बंद कर उसे लादना चाहते हैं, जिसमें जान नहीं है और उन भौतिक व यांत्रिक अर्हताओं को महत्त्व देना चाहते हैं, जो शिक्षा की आत्मा पर तो असर नहीं डालती पर उसकी आत्मा के महत्त्व को घटा देती हैं। यह बुनियादी शिक्षा के स्वतंत्र व परिवर्तनशील स्वरूप को मानने वालों के सामने चुनौती है कि वह इससे कैसे जूझें। और बुनियादी व वैकल्पिक स्वतंत्र शिक्षा की उन लोगों के सामने चुनौती है, जो यथार्थ व मानव स्वभाव को भूल कर यांत्रिक हल ढूंढ रहे हैं।

**संपादक**

# आज के संदर्भ में बुनियादी शिक्षा को समझना

★ हृदय कांत दीवान

फिलहाल हमारे सामने मुद्दा यह नहीं है कि हम बुनियादी शिक्षा को मुख्यधारा में लाएं बल्कि यह है कि मुख्यधारा को बुनियादी शिक्षा के विचार के अनुरूप बनाएं। शिक्षा तंत्र का मुख्य उद्देश्य और सिद्धान्त है कि वह शिक्षा को समाज के सबसे उपेक्षित लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने आपको उपयुक्त बनाए। यह सुनिश्चित करे कि वह समुदाय के द्वारा पैदा की गई आकांक्षाओं एवं ज्ञान को प्रतिबिम्बित करे। साथ ही यह भी सुनिश्चित करे कि सभी को समान रूप से अवसर मिलें। वे अपने समाज एवं समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। यहां ज़रूरत यह है कि हम अपने हित को एक सीमा तक सर्वहित में मिला दें, जो कि समाजीकरण के लिए भी ज़रूरी है। यहां मंशा यह नहीं है कि हम वैयक्तिकता को पूर्ण रूप से त्याग दें, बल्कि सबके हित और लाभ के लिए उसे कुछ कम कर दें। यहां उपलब्ध सामग्री के प्रति लालची होने के बजाय साफ़गोई और खुलेपन में संतुलन लाने और हम बुनियादी शिक्षा के द्वारा क्या फैलाना चाहते हैं, इस पर गम्भीर चिन्तन की ज़रूरत है। इसके लिए मूलभाव बलिदान और संयमी अस्तित्व नहीं है, वरन् विलासपूर्ण जीवन और उपभोक्तावाद की सीमाओं को पहचान पाना है।

इस विमर्श में शक्ति में कमतर लोगों के ज्ञान के उपयोग एवं आदर को शामिल करना महत्त्वपूर्ण है। यह उनके सशक्तिकरण की ओर एक कदम भी हो सकता है। उच्च शिक्षा व स्कूली शिक्षा दोनों में ही इस ज्ञान के लिए आदर भाव पैदा करना बहुत बड़ी चुनौती है।

**फिलहाल हमारे सामने मुद्दा यह नहीं है कि हम बुनियादी शिक्षा को मुख्यधारा में लाएं बल्कि यह है कि मुख्यधारा को बुनियादी शिक्षा के विचार के अनुरूप बनाएं। शिक्षा तंत्र का मुख्य उद्देश्य और सिद्धान्त है कि वह शिक्षा को समाज के सबसे उपेक्षित लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने आपको उपयुक्त बनाए। यह सुनिश्चित करे कि वह समुदाय के द्वारा पैदा की गई आकांक्षाओं एवं ज्ञान को प्रतिबिम्बित करे।**

भारत अपनी स्वेच्छा से लोकतांत्रिक गणराज्य है। बहुत बड़े जन आन्दोलन के बाद इसकी वृहद् संविधान सभा ने बैठकर लोकतंत्र और समानाधिकारवादी रास्ते पर जाने का निश्चय किया। यह वह रास्ता है जिस पर हमें चलने की ज़रूरत है और उसमें शैक्षिक संस्थाओं को मदद करनी है। लोकतंत्र नागरिकों की शासन में सहभागिता और समाज के आगे जाने के रास्ते को विकसित करने

★ विद्या भवन सोसयाटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार हैं।

में ज़िम्मेदारी के साथ भागीदारी करने पर टिका होता है। सभी लोगों के सीखने के लिए समान जगह बनाने के लिए यह पहचानना आवश्यक है कि सभी समुदाय जीवन के प्रति अपने विचारों और अपनी संस्कृति का संरक्षण भी चाहते हैं और साथ ही वे उसमें बदलाव भी चाहते हैं। मसला यह है कि कहां हमें उनकी इच्छाओं का सम्मान करने की ज़रूरत है और कहां उन्हें बदलाव के लिए राज़ी करने की। जिस तरह से बुनियादी शिक्षा का रास्ता समुदाय व उसके ज्ञान के साथ जुड़ने की अपेक्षा करता है, उससे यह भी पता चलता है कि ये प्रक्रिया कैसी होनी चाहिए। यह मामला नए विचारों को लाने वाले और परम्पराओं का संरक्षण करने वालों के बीच सार्थक अंतःक्रिया का है। ये वार्ताएं और अंतःक्रिया किस रूप में होगी और संतुलन के आयामों का चुनाव कैसे होगा, इसी से इसकी प्रगति निर्धारित होगी। ऐसे परिवर्तन सामूहिक मंशा नहीं वरन् वैयक्तिक रूप से जो जैसे चाहे वैसे चुनावों से संचालित होते हैं, और इनके परिणाम स्वरूप लोकतंत्र विरोधी, अनुदारवादी विचारों और हिंसा की भी उत्पत्ति होती है। कई बार परिवर्तन की गति गम्भीर अलगावों को जन्म देती है। भारत में शिक्षा पर बहस स्वतंत्रता से पहले की है और बाद की बहस इस ओर भी इशारा करती है कि ज्ञान में पहले से ही व्याप्त विचारों के विकास और नए विचारों के आने में संतुलन की ज़रूरत है।

शिक्षा के शासन तंत्र की संस्कृति भी इस चर्चा का बहुत महत्त्वपूर्ण घटक है, क्योंकि इसमें ही सबको शामिल करने की भावना का वास्तविक रूख तय हो

पाएगा। वर्तमान ढांचा, जो कि केन्द्रीकृत है और बड़ी तेज़ी से इसका और अधिक केन्द्रीकरण होता जा रहा हैं, वह इस कार्य के लिए अनुपयुक्त है। बुनियादी शिक्षा, स्कूल के शिक्षकों व बच्चों के पालकों की सामूहिक जिम्मेदारी तो मानती है परन्तु साथ में उन्हें स्कूल संचालित करने का अधिकार भी देती है। इस ढांचे की ज़वाबदारी बच्चों की तरफ और वहां के समाज की ज़रूरतों की तरफ़ भी है। ऐसे में शिक्षा शासन तंत्र में ज़वाबदेही का मुंह बच्चों की तरफ़ न होकर अधिकारियों व मंत्रियों की तरफ़ है, जो आम लोगों को और बच्चों को ढांचे से अलग करता है।

धीरे–धीरे शिक्षा के केन्द्रीकृत ढांचे की पहुंच विकेन्द्रीकरण के नाम पर और गहरी हुई है व शिक्षक व स्कूल की स्वतः कार्य करने की जगह सिकुड़ती गई है। धीरे–धीरे यह नियंत्रण निर्धारण का आधार व स्वयं कुछ कर पाने की जगह राज्य की राजधानी से निकल कर केन्द्र तक पहुंच रहा है। इस बढ़ते नियंत्रण का निहितार्थ तो लोगों की भागीदारी को बेमानी करना है, किन्तु इसके बढ़ने का कारण लगभग गैर प्रजातांत्रिक है। यह दिशा, अविश्वास पर आधारित है और यह मानती है कि लोग सही रास्ते पर नहीं बढ़ सकते। पिछले साठ सालों में शिक्षा इस केन्द्रीकरण की ओर बढ़ी है।

गर्वनेन्स का ढंग ऐसा होता जा रहा है, जिसमें यह माना जाने लगा है कि अधिकारी खास होते हैं व उनमें अधिक समझ, क्षमता व ज़िम्मेदारी होती है। ऐसा ढांचा जो ऐसे ही कुछ विश्वस्त, समर्पित और शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा निर्देशित भी है और निर्धारित भी, वह ही उसे उचित ढंग से चला सकता है। यह विचार बुनियादी शिक्षा व उससे जुड़े राजनैतिक दर्शन के खिलाफ तो है ही परन्तु देश में लोकतांत्रिक नीति बनाने व लोकतंत्र की तरह चलने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। वर्तमान परिस्थिति में नियमों और कानूनी घोषणाओं के वास्तविक स्वरूप में लोकतंत्र के ये सारे तत्व दूसरे स्थान पर आते हैं। जिस तरह से परिवार और समुदाय सोचता है, वह जिसको महत्त्वपूर्ण समझता है, उसके लिए जगह नहीं है। नीति निर्धारकों द्वारा वृहद् स्तर पर की गई घोषणाएं, उनका पालन व पालन हो गया ऐसी रिपोर्ट सब जगह से निर्धारकों के ढांचे पर पहुंचाने में सब लोग लगे हैं।

**बुनियादी शिक्षा, स्कूल के शिक्षकों व बच्चों के पालकों की सामूहिक जिम्मेदारी तो मानती है परन्तु साथ में उन्हें स्कूल संचालित करने का अधिकार भी देती है। इस ढांचे की ज़वाबदारी बच्चों की तरफ और वहां के समाज की ज़रूरतों की तरफ़ भी है। ऐसे में शिक्षा शासन तंत्र में ज़वाबदेही का मुंह बच्चों की तरफ़ न होकर अधिकारियों व मंत्रियों की तरफ़ है, जो आम लोगों को और बच्चों को ढांचे से अलग करता है।**

यहां यह कहना आवश्यक है कि ऐसा नहीं है कि ये सारे नियम हमेशा ही अनावश्यक एवं उल्टी दिशा में ले जाने वाले होते हैं। लेकिन यह भी सही है कि इनकी प्रवृत्ति एक हद के बाद लाभकारी नहीं रहती। जब तक कि संचालन के तरीके, प्रत्येक स्तर के लोगों की आकांक्षाओं, इच्छाओं और ताकतों को शामिल करने के प्रति संवेदनशील न हो और उनके लिए जगह न हो, तब तक सभी बच्चे शिक्षा

में शामिल नहीं हो सकते। शिक्षा के संदर्भ में स्वतंत्रता पूर्व व स्वतंत्रता के बाद हुई बहसों में शिक्षित होने व साक्षर होने में भेद पर काफ़ी प्रकाश डाला गया था। शिक्षा के समाज के साथ जुड़ाव व उसके विकास व संतुलन के साथ संबंध पर ध्यान देने के बाद ही आज के प्रयासों की तुलनात्मक उपादेयता पर विचार हो सकता है। इस तंत्र को समझने की ज़रूरत है कि लोगों की इच्छाओं, प्रेरणाओं और आवश्यकताओं को नज़रअन्दाज़ कर कुछ और थोपना स्थाई नहीं है। मनुष्य स्वभाव से ही स्वतंत्र और स्वायत्त है। उन्हें कुछ नियमों और सिद्धान्तों की ज़रूरत तो है, जिनका वे पालन कर सकें। पर ऐसा नहीं हो सकता कि वे पूरी तरह से परिस्थिति विहीन दृष्टि से बनाई प्रक्रियाओं और बनाए गए नियमों से संचालित हो सके।

उन्हें संचालन में सार्थक भागीदारी चाहिए। बुनियादी शिक्षा में विकेन्द्रीकरण की योजना, समुदाय की सहभागिता और निर्णय लेने में उनकी भूमिका केन्द्र में है। यह सोचने लायक है कि हम पिछले 20 सालों में इससे और दूर होते जा रहे हैं। लोगों की अपेक्षा और मांग तो बढ़ रही है, किन्तु उसकी दिशा के बारे में अपनी सोच व उसे प्रभावित करने की क्षमता घट रही है।

कागज़ों पर तो शिक्षा में समुदाय की सहभागिता को लेकर सहमति है। योजना के दस्तावेज़ों में यह देखा जा सकता है। ऐसे ढांचे भी प्रस्तावित हैं, जो इसे सुनिश्चित कर सकें, किन्तु व्यवहार में यह नहीं दिखता। शामिल करने का वह भाव, समुदाय की भूमिका और वह तरीका जो यह ताकत उन्हें दे सके जिससे वे स्कूलों की कार्य प्रणाली को एक सीमा तक प्रभावित सकें, इन दस्तावेज़ों में व क्रियान्वयन में नहीं दिखता।

यहां हम बुनियादी शिक्षा की मूल बातों व उनके बारे में कुछ स्थायी भ्रम को देखते हैं।

## मूल सिद्धान्त

बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों में निम्न बातें शामिल हैं –

(अ) एक ऐसी प्रक्रिया, जो समुदाय, उसके विचारों, सरोकारों और अनुभवों को शामिल करने पर आधारित हो।

(ब) एक ऐसी प्रक्रिया हो जो बच्चे को उसके संदर्भ व अनुभवों के साथ शामिल करने पर आधारित है।

(स) बच्चों की भाषा का उसे शिक्षित करने के लिए उपयोग हो।

(द) सभी बच्चे और समुदाय के सभी सदस्यों तक उनके काम का सम्मान करते हुए और उनके अनुभवों को स्कूल में शामिल करते हुए पहुंचना।

(य) ऐसे एकीकृत अनुभवों का इस्तेमाल करना जो नैतिकता और सरोकार (दिल) अवधारणाएं, प्रक्रियाएं और तार्किक क्षमता (दिमाग़) और चीज़ों को उत्पन्न करने की क्षमता, सहनशक्ति, सृजनात्मकता और क्रियाशीलता (हाथ) विकसित करे।

बच्चों में (व समाज में) स्कूल को चलाने में, समुदाय में अपनी काम करने की भूमिका को खोजने और ज़िम्मेदारी ग्रहण करने के साथ आत्मविश्वास और सामाजिक प्रतिबद्धता का विकास करना।

## बुनियादी शिक्षा के बारे में कुछ भ्रम

(अ) यह ग्रामीण और ग़रीब बच्चों के लिए है। इन बच्चों को ऐसी शिक्षा की ज़रूरत है, जिससे वे अपने हाथों से काम करके पैसे कमाना सीखें।

(ब) बच्चे की मातृभाषा के प्रयोग का मतलब है कि जो भाषा उनके वर्तमान परिवार, विशेषकर बच्चे के प्राथमिक पालनकर्त्ताओं द्वारा बोली जाती है।

(स) इसके पाठ्यक्रम में तकली घुमाना सीखना और ऐसे ही अन्य व्यवसाय शामिल होने चाहिए और नए विचारों और नई दिशा में सोचना निषिद्ध है। लगभग 70 वर्ष पूर्व, जब भारत में बुनियादी शिक्षा का विचार विकसित हो रहा था, उस समय स्कूल के लिए चुने गए या प्रचलित उद्योग या व्यवसाय ही बुनियादी शिक्षा के विचार की जड़ में हैं। वही इसका आधार हैं।

(द) स्कूल को खुद द्वारा कमाई गई आय से ही चलाया जाना चाहिए।

(य) स्कूल में जो कुछ भी हो वह एक दूसरे से आवश्यक रूप से जुड़ा होना चाहिए और सभी अवधारणाएं विभिन्न व्यवसायों में काम करने के द्वारा ही सिखाई जानी चाहिए।

(र) बुनियादी शिक्षा का मतलब है बच्चे को व्यवसाय के लिए तैयार करना और यह व्यावसायिक शिक्षा की शुरूआत है।

## बुनियादी शिक्षा को आज के सन्दर्भ में समझना

शिक्षा, समाज और उसमें चल रहे परिवर्तनों व विमर्शों का एक भाग है। यह समाज की प्रगति और क्रमिक विकास को प्रभावित करती है और उससे प्रभावित भी होती है। शिक्षा की, अर्थव्यवस्था, अवसरों और सामाजिक रूख के साथ जीवंत अन्तःक्रिया होती है। इसीलिए किसी भी शिक्षा दर्शन के सिद्धान्तों की व्याख्या उन सन्दर्भों में करनी ज़रूरी है, जिसमें वे स्थित होते हैं। बुनियादी शिक्षा के लिए इसका औचित्य विशेष रूप से है। क्योंकि आज इसके अनेक जीवन्त सिद्धान्त जो कि स्वतंत्रता पूर्व की प्रस्तावित रणनीतियों में जड़ हो गए हैं और उस समय के लिए ये रणनीतियां उपयुक्त थी किन्तु आज नहीं। अभी भी इनमें ज़ोर इसके आडम्बर व दिखावट पर है। इसके बजाए कि इसकी आज के संदर्भों में स्थापित हो पाने की किस तरह की संभावनाएं हैं। वास्तव में यह एक बहुत बड़ी विडम्बना ही है, क्योंकि बुनियादी शिक्षा, इसके सिद्धान्तों की व्याख्या और इसका उस समय का स्वरूप तात्कालिक स्वरूप के व्यावहारिक विकल्प के रूप में था। बुनियादी शिक्षा परिवर्तन की आवश्यकता व उसकी संभावनाओं के प्रति व्यावहारिक नज़रिया रखती है, इसे जड़ बनाना इसके सिद्धान्तों के साथ अन्याय है। यह शिक्षा से लोगों के अलगाव को कम करने पर बल देती थी। वह पहचानती थी कि शिक्षा एक दुधारी तलवार है और उसे समुदाय के ज्ञान का सम्मान करना और उन्हें अशिक्षित के रूप में न देखना सीखना होगा। यह श्रम की महत्ता को मानव जीवन के अनिवार्य हिस्से के रूप में पहचानती है और यह भी अपेक्षा (मांग) करती है कि सभी बच्चों को, चाहे वे किसी भी परिवेश के हों, उन सभी उद्यमों में व सरोकारों में भाग लेना चाहिए जो कि उनके समुदाय का हिस्सा है।

यह तर्क दिया जा सकता है कि बुनियादी शिक्षा अवधाराणात्मक विकास और बच्चों को किसी विशिष्ट विषय में सक्षम बनाने पर बहुत कम ध्यान देती है। इसके अस्पष्ट व अनिर्धारित पूर्णता पर आग्रह और थीम्स में कार्य करने पर ज़ोर का निहितार्थ है, विषय संबंधी अवधारणाओं के निर्माण की संभावना को कमतर आंकना।

अब हमारे सामने चुनौती यह है कि विभिन्न विषयों के अवधारणात्मक ढांचों को नकारे बिना बुनियादी शिक्षा पर आधारित पूर्ण शिक्षा के विचार को प्रस्तुत

करना। दूसरी चुनौती, यह है कि इसके सिद्धान्तों का सम्बन्ध बच्चों में अमूर्तीकरण की क्षमता को विकसित करने से जुड़े और यह उसके लिए आधार दे सके। उन्हें हर तरह की परिस्थितियों के संदर्भ में औपचारिक तर्क करने में समर्थ होने की ज़रूरत है। यह कुछ हद तक स्कूलों में अभी भी करना संभव है, किन्तु थोड़ा आगे बढ़ने पर ज्ञान क्या है और सीखने का क्या मतलब है, के बारे में एक भिन्न विचार की ज़रूरत (मांग) होगी।

## गांधी शिक्षा विचार को मुख्य धारा में लाने का मुद्दा

जैसा ऊपर कहा गया है कि हमारे लिए मुख्य धारा की शिक्षा में बुनियादी शिक्षा को सम्मिलित करने की बजाए गांधी के विचार को लेकर मुख्य धारा को उसके अनुरूप बनाना व लाना एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। सामान्यतः हम गांधीजी और बुनियादी शिक्षा के उन मूल बिंदुओं की अनदेखी कर जाते हैं, जो कि हमारे आसपास की दुनिया को बदलने का प्रयास करते समय पर्यावरण, परिस्थिति एवं प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से सबसे कमज़ोर व्यक्ति, के अनुरूप हैं। यह बात सिर्फ़ स्वयं के लाभ के बारे में सोचने से अलग प्रकार की बात है। आज मध्यम वर्ग की इच्छाएं और आवश्यकताएं भी अंतहीन हैं, हम उन सभी को सब के लिए पूरा नहीं कर सकते, तो क्या करें? यह भी स्पष्ट है कि जैसे–जैसे आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वे बढ़ती जाती हैं और अधिक सुविधाओं की आवश्यकता महसूस होने लगती है। ज़ाहिर है कि आवश्यकताओं को सीमित करना और उनका संतुलन बनाना ही होगा। मानव श्रम के प्रति सम्मान का सिद्धान्त इस बात की ओर इंगित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार का श्रम अवश्य करना चाहिए। चुनौतीपूर्ण कार्य, मानसिक विकास और शारीरिक सक्षमता (फ़िटनेस) में मदद करता है व सृजन करने का विश्वास भी। यह श्रम के महत्त्व को स्वीकार और आत्मसात् करते हुए संवेदनशील बनाता है। हम यह भूल जाते हैं कि बुनियादी शिक्षा का मूल सिद्धांत समाज का सामूहिक रूप से भला करना है, न कि व्यक्तिगत लाभ व आय निर्धारण हेतु बच्चों में स्पर्धा कराना अथवा अध्यापक, प्रशिक्षकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं इत्यादि को व्यक्तिगत लाभ पहुंचाना।

**बुनियादी शिक्षा परिवर्तन की आवश्यकता व उसकी संभावनाओं के प्रति व्यावहारिक नज़रिया रखती है, इसे जड़ बनाना इसके सिद्धान्तों के साथ अन्याय है। यह शिक्षा से लोगों के अलगाव को कम करने पर बल देती थी। वह पहचानती थी कि शिक्षा एक दुधारी तलवार है और उसे समुदाय के ज्ञान का सम्मान करना और उन्हें अशिक्षित के रूप में न देखना सीखना होगा।**

## सीखना याने स्वयं सृजन करना व स्वयं सोचना :

बुनियादी शिक्षा में उद्यम को स्कूल में महत्त्वपूर्ण स्थान क्यों दिया गया, इस बात का निर्माणवादी दृष्टिकोण से भी संदर्भ जोड़ सकते हैं। निर्माणवादी दायरे में बच्चा खुद ज्ञान का निर्माण करता है। उसे अपने विचारों पर चिंतन–मनन करने, उनके विश्लेषण, उपयोगिता की परख करने की आवश्यकता है। ख़ोजबीन व मनन साथ–साथ चलते हैं और ठोस अनुभवों की सबसे अच्छी बुनियाद तब पड़ती है जब

बच्चे कुछ बना रहे हों व कर रहे हों। इसके लिए बच्चों को कुछ कार्य करने की, सृजन करने की व बनाने की ज़रूरत है। यह बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त के अनुसार है, जिसमें बच्चे को खुद अपने हाथों से कार्य करना होगा। यह प्रक्रिया बच्चे के शरीर की विभिन्न इंद्रियों को भी सक्रिय रहने के अवसर देती है। बच्चा अपने स्तर पर कुछ रचे और उस रचने के दौरान वह जिन प्रक्रियाओं से गुज़रे उनसे ज्ञान का अर्जन करे। यदि बच्चे को कुछ रचने का अवसर दिया जाता है तो रटंत शिक्षा से छुट्टी पाई जा सकती है। यानी रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में सीखना बच्चे के लिए अपने ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद–विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व ऐसा चिंतन जिससे सिद्धांत बन सकें और विचार/स्थितियों की रचना हो सके, ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। साथ काम करने में व चीज़ें बनाने में इन सबकी ज़रूरत है। यदि हमको अच्छी शिक्षा को सुनिश्चित करना है तो बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान करने होंगे, जिनमें वे प्रश्न पूछकर, चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात् कर सकें।

सीखने की प्रक्रिया का एक और अभिन्न अंग है, आसपास के वातावरण, प्रकृति, चीज़ों व लोगों से कार्य व भाषा दोनों के माध्यम से अंतःक्रिया करना। बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण सीखने में अहम् भूमिका अदा करता है। परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और वह जीवन में सार्थकता पाता है। हालांकि पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षा–शास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही इस समझ की अवहेलना की जाती रही है। बुनियादी शिक्षा को प्रासंगिक बनाने का अर्थ यही है कि सीखने को बच्चे के परिवेश से जोड़ा जाए। स्कूल तथा बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा रेखा को कमज़ोर किया जाए। यह केवल इसलिए नहीं कि अपने परिवेश में बच्चों का अपना अनुभव ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है, बल्कि इसलिए भी कि ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है।

बुनियादी शिक्षा के एक पहलू को पकड़कर हम बाक़ी के आयामों को अपनाने की दिशा में थोड़ा आगे बढ़ सकते हैं। जब बच्चे को हाथों से किसी चीज़ का सृजन करना है तो उसको कई प्रक्रियाओं से गुज़रना होगा। कोई भी कार्य करते समय उसके साथियों की मदद चाहिए होती है। अलग–अलग हिस्सों को जोड़कर ही कुछ उत्पाद बनते हैं और इससे ही फिर समूह भावना का विकास होता है।

इस प्रकार से बच्चा शिक्षा प्राप्त करते हुए व्यवहार में उपयुक्त मूल्यों की सीख भी आचरण में उतारता है। जब बच्चा कुछ बनाता है व उस पर उसे प्रोत्साहन मिलता है तो उसके मन में संतोष के भाव पैदा होते हैं। मेहनत से एक आत्मबल मिलता है। जब बच्चा मेहनत करता है तो उसमें समस्याओं से जूझने और उनको हल करने की क्षमता का विकास भी होता है। यानी बहुत सी बातें, जो हम शिक्षा में करना चाहते हैं, बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को सही ढंग से, परिस्थिति के संदर्भ में परिभाषित करके की जा सकती हैं।

## हमारी कार्यनीति क्या हो?

गांधीवादी अर्थव्यवस्था और उससे उभरने वाले विश्व परिदृश्य को आज के संदर्भ में समझना इतना आसान नहीं है। इस सबको करने के लिए हमें बहुत धैर्य की आवश्यकता है। हमें आत्मविश्वास और सहनशीलता भी चाहिए। आज लोगों की

ज़रूरतें और आवश्यकताएं इस क़दर बढ़ गई हैं कि गांधीजी की किफ़ायत व संतुलन की धारणाओं को समझना व उसका जीवन में उपयोग कर पाना सरल नहीं है। बुनियादी शिक्षा का दर्शन उपभोक्तावाद व लालच के खिलाफ़ है। गांधीवादी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में विकास को पुनः परिभाषित करना होगा। यह सब सभी के लिए सरल नहीं है। शिक्षा का दर्शन समाज के लिए एक आयाम है और जीवन में उपयोगी व अर्थपूर्ण क्या है इसका यह वैकल्पिक दर्शन है। इसी कारणवश यह मुख्यधारा की शिक्षा व अर्थव्यवस्था दोनों पर टिप्पणी है। यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि संभवतः यह कभी भी आसान नहीं था।

जिन मुद्दों को हम महत्वपूर्ण मानते हैं, उन्हें पहचानने की आवश्यकता है। हमें बहुत सारी चीज़ें एक साथ हाथ में नहीं लेनी चाहिए और एक ऐसी कार्यनीति तैयार करने का प्रयास करना चाहिए, जिसके द्वारा हम इसे स्वीकार करने हेतु अधिक लोगों को तैयार कर सकें। लोगों के बीच विभाजन का एक सबसे बड़ा कारण है, उनमें परस्पर सामान्य अनुभव के आदान–प्रदान की कमी। इस संदर्भ में यह बात महत्वपूर्ण है कि कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति जुड़ा हुआ है। शिक्षा के लोक व्यापीकरण की ज़रूरत इसे संभव करने हेतु अवसर प्रदान करती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा में दोनों पहलुओं का समावेश हो, उन विचारों के साथ कार्य करने का जो अमूर्त है और वह जो उपलब्ध सामग्री के साथ काम करते हुए अपने हाथों के उत्पादक उपयोग की मांग करते हैं। हम यह कह कर चर्चा को समाप्त नहीं कर सकते कि बुनियादी शिक्षा तो असफल सिद्ध हो गई है या उसके विपरीत यह मानना कि जो लोग बुनियादी शिक्षा को नहीं मानते वह किसी पूर्वाग्रह के कारण ऐसा कर रहे हैं। दोनों ही मत बुनियादी शिक्षा के दर्शन के साथ अन्याय करते हैं। हमारा लक्ष्य बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के संदर्भ में संवाद को आगे बढ़ाना है।

## सवाल आदर्श स्वरूप व व्यवहार के बीच सामन्जस्य का :

एक और महत्त्वपूर्ण बात, जिस पर सोचने की ज़रूरत है, वह है आदर्श स्वरूप व व्यवहार के बीच सामन्जस्य का। बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन व उसमें उभरा विमर्श उस समय की परिस्थिति के प्रति एक ज़वाब भी था। हालांकि इसके दर्शन की मुख्य बातें आज भी इतनी ही महत्वपूर्ण हैं और उस समय से अधिक सार्थकता रखती हैं, फिर भी उनके स्वरूप को आज के संदर्भ में रखना होगा। बुनियादी शिक्षा का दर्शन जिन परिस्थितियों में विकसित हुआ और उसके उपयोग व प्रयोग के प्रयास जो थे वे एक जगह आकर स्थिर हो गए व उन्होंने समाज की बदलती धारा से रिश्ता तोड़ लिया। उस समय जो समाज की दिशा थी उसमें बुनियादी शिक्षा के उपलब्ध स्वरूप की प्रासंगिकता को ढूंढना कठिन था। बुनियादी शिक्षा के स्वरूप में तात्कालिक हालात के अनुकूल परिवर्तन करने की जरूरत थी। ऐसा परिवर्तन जिसमें सिद्धान्तों में हेरफेर न हो, किन्तु व्यवहार में उसको समझ कर लोगों के साथ उस पर संवाद कर पाएं। बुनियादी शिक्षा के प्रवक्ताओं ने इस संवाद को बनाने व चालू रखने के कोई प्रयास नहीं किए। परिवर्तनों को बुनियादी शिक्षा को अशुद्ध करने वाला बताया। हालांकि यह कहना सरल नहीं है कि ऐसा उन्होंने किन कारणों के चलते किया और यह सोचना तो और भी कठिन है कि उनका ऐसा करना सरल था अथवा कठिन फिर भी यह तो स्पष्ट है कि इसकी वज़ह से बुनियादी शिक्षा का दर्शन, शिक्षा की मुख्य

धारा से विमुख हो गया।

इसको मानने वाले लोग इसकी शुद्धता व जड़ता की रक्षा करने व उसे बनाए रखने के लिए ही कार्य करते रहे। उनका प्रयास यह था कि किसी तरह हम वापस लौट कर वहां पहुंचें, जहां बुनियादी शिक्षा का वह स्वरूप जो उनके जीवन का अंग था पुनः स्थापित हो। किन्तु यह तो संभव नहीं है। समाज की ज़रूरतें, परिस्थितियों के बदलने के साथ–साथ बदलती हैं। समाज में, सिद्धान्तों को समझ कर नये रास्ते व नये लक्ष्य बनाए जा सकते हैं। पुराने स्वरूप तक पहुंचने की मांग, त्याग, बेहिसाब नैतिकता व किफ़ायत एक आदर्श के रूप में तो स्वीकार्य है, किन्तु हरेक व्यक्ति उसे उस तीव्रता से उपयोग करे, यह अपेक्षा करना मुश्किल है। 'आदर्श' स्वरूप के जड़ रूप से चिपके रहने के कारण भी बुनियादी शिक्षा आम लोगों से अलग–थलग पड़ गई।

**समाज की ज़रूरतें, परिस्थितियों के बदलने के साथ–साथ बदलती हैं। समाज में, सिद्धान्तों को समझ कर नये रास्ते व नये लक्ष्य बनाए जा सकते हैं। पुराने स्वरूप तक पहुंचने की मांग, त्याग, बेहिसाब नैतिकता व किफ़ायत एक आदर्श के रूप में तो स्वीकार्य है, किन्तु हरेक व्यक्ति उसे उस तीव्रता से उपयोग करे, यह अपेक्षा करना मुश्किल है। 'आदर्श' स्वरूप के जड़ रूप से चिपके रहने के कारण भी बुनियादी शिक्षा आम लोगों से अलग–थलग पड़ गई।**

## किस प्रकार के उद्यम लें :

अगर हम यह मूल्य स्थापित करना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने हाथों से कुछ कार्य अवश्य करना चाहिए तो यह सिर्फ़ ग्रामीण व ग़रीब बच्चों के लिए नहीं हो सकता। आज जब बहुत से उच्च वर्ग के लिए बने स्कूल भी न सिर्फ क्राफ्ट व सृजनात्मक अभिव्यक्ति की बात करते हैं, वरन् हर बच्चे के लिए कुछ ज़िम्मेदारी भी तय करने का प्रयास करते हैं। यह स्पष्ट है कि इस कार्य को अर्थपूर्ण बनाने की दृष्टि से यह अभ्यास रूचिकर और चुनौतीपूर्ण होना चाहिए। बच्चों व उनके पालकों को यह भी लगना चाहिए कि कुछ नया सीखा जा रहा है। हाथ से कार्य करने की प्रक्रिया मात्र यांत्रिक, पुनरावृति अथवा बच्चों का श्रम करने के लिए उपयोग का माध्यम न बन जाए, हमें इस बात का ध्यान रखना होगा। कार्य सृजनात्मक एवं उत्पादक होना चाहिए और इसमें सीखने वाले का दिमाग़ का उपयोग होना चाहिए, जिससे कि बुनियादी शिक्षा का सिद्धान्त ''हाथ के उपयोग के माध्यम से सीखना'' व्यवहार में आ सके। इसके लिए इस प्रकार की प्रवृतियों और कार्यों को खोजने तथा तैयार करने हेतु प्रयास करने होंगे, जिनसे विद्यार्थियों में ऐसे कार्य करने की संभावनाएं और क्षमता उत्पन्न की जा सके, जिसके आधार पर वे मूल सामग्री के मूल्य की वृद्धि प्राप्त कर पाएं व नये डिज़ाइन व नये उत्पाद तैयार कर पाएं। इस संभावना का पता लगाया जा सकता है कि क्या उन कार्यो से विद्यार्थियों को थोड़ी आय भी हो सकती है। किन्तु यह आय किसी भी स्थिति में अधिक नहीं हो सकती और किसी भी प्रकार से विद्यालय के खर्चे की पूर्ति नहीं कर सकती। विद्यालय का मुख्य काम बच्चों को सिखाना है और उत्पादन से आय प्राप्त करने का प्रयास नहीं है। आज की टैक्नोलॉजी व मार्केट व्यवस्था में उत्पादन का दर व श्रम से प्राप्त मूल्य,

बच्चों द्वारा उत्पादित माल की गुणवत्ता आय को सीमित करते हैं।

**सुखद और सर्वत्र सुलभ विकल्प की खोजः** जहां भाषा अहम व राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो सकता है, वहां यह भी स्पष्ट है कि भारत के शहरों की कम से कम ऐसी चर्चाएं वातानुकूलित कमरों में न हों। रहने में व कार्य करने में एक संतुलित सुविधा का होना और यह अहसास कि अर्थव्यवस्था अंग्रेज़ी भाषा तथा कंप्यूटर के उपयोग से देश के बाहर से कराए गए कार्य पर आधारित है। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो आरंभ तो हो ही चुकी है पर इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि वह अपनी जड़ें काफी गहरी बना चुकी है। राजनैतिक दृष्टि से वैश्वीकरण का समर्थन कर रही शक्तियों का मुकाबला करना अथवा उन्हें पराजित करना जल्दी संभव नहीं हो पाएगा। बिना किसी ऐसे विकल्प के जो सुखद हो और सर्वत्र सुलभ हो, उपभोक्तावाद से लड़ना कठिन होगा। यह सत्य है कि पर्यावरण के वैश्वीकरण के संबंध में हाल ही में की गई खोज व चिन्ताओं ने तथा संरक्षण पर बढ़ते जोर ने, इस विषय में संतुष्टि को, उन लोगों के बीच भी एक महत्त्वपूर्ण विचार बना दिया है, जिन्हें आर्थिक दृष्टि से इसकी आवश्यकता नहीं है। लोगों को अभी भी व्यावहारिक रूप में गांधीवाद की शक्ति, सामर्थ्य व निहितार्थ महसूस कराना आसान नहीं है। वे संरक्षण व संतुलन की बात तो करते हैं, लेकिन यह निर्णय नहीं लेते कि साधारण स्वच्छ वातावरण, कार्य क्षमता को बढ़ाता है तथा शरीर को अधिक आराम तथा सुविधाएं देने से इसका क्षरण ही होता है।

**अति व्यक्तिवादी आकांक्षाएं हमारी चुनौतीः** बुनियादी शिक्षा उन मूल्यों की ओर भी इशारा करती है, जिन पर शिक्षा द्वारा ज़ोर दिया जाना चाहिए। इन मूल्यों में सहयोग, पर्यावरण एवं आस–पास के समाज के प्रति उत्तरदायित्व, ईमानदार, लगनशील तथा उद्देश्यपूर्ण होना, साथ ही दूसरों की तकलीफ़ और आवश्यकताओं के प्रति करूण भाव और जो कुछ अपने पास है, उसे लोगों के एक वृहत्तर दायरे में बांटना शामिल है। इसी से ही संतुलित आवश्यकताएं, संतोष, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा व्यक्ति जिस समुदाय का है उस समुदाय में सहकार तथा खुशी लाने की दृष्टि मिलती है। इस तरह के विचार जीवन को एक स्पष्ट उद्देश्य प्रदान करते हैं। आज के युग में अति व्यक्तिवादी आकांक्षाओं व हर हाल में ज़्यादा छीनकर उपयोग करने के प्रयासों पर अंकुश लगाना ज़रूरी है। यह अब सब मानते हैं कि शिक्षा के सामने यही सबसे बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए आवश्यक है कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों को आज के संदर्भ में समझा जाए और उपयोग किया जाए।

**स्कूल पर सकारात्मक दबाव कैसे :** हम यह कह सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा का दर्शन ज्ञान सृजन, ज्ञान व्यापीकरण तथा ज्ञान के सम्मिश्रण पर ज़ोर देता है। और इसके पश्चात् अपने आस–पास के लोगों के बीच इसे बांटने के लिए प्रेरित करता है, जिससे कि सभी का जीवन बेहतर हो सके। अतः एक प्रकार से बुनियादी शिक्षा से जीवन का जो उद्देश्य उभरता है, वह है समुदाय के जीवन में सुधार और लोगों के संघर्ष में उन्हें आगे बढ़ाना। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इस संघर्ष के व आगे बढ़ने के आयाम और संघर्ष के तरीके भी उन्हीं सिद्धान्तों से निकलने चाहिए जो बुनियादी शिक्षा के हैं। इस प्रक्रिया और इस प्रयास में हमें यह आश्वस्त करना होगा कि समुदाय में सभी सुखी तथा संतुष्ट हों और किसी भी व्यक्ति के आत्मसम्मान का हनन नहीं हो। और यह सब करना एक कठिन उद्देश्य की पूर्ति करना है। जिन तथ्यों और उद्देश्यों की हम चर्चा कर रहे हैं, उन को संभव बनाने के प्रयास

के लिए हमारे पास विद्यार्थी तथा विद्यालय हैं। यह कार्य केवल उनके बस का नहीं है। उनकी ताकत से इस प्रयास को बहुत दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। स्कूल में यह हो पाए यह भी सरल नहीं है। यह ऐसे वातावरण के निर्माण की मांग करता है, जिसमें अध्यापकगण अपेक्षाकृत सुरक्षित व सहज महसूस कर सकें। वे कोई दबाव महसूस न करें, उस सकारात्मक दबाव को छोड़ कर जो नैतिकता व सदाचार से आते हैं। ये सब बड़ी कठिन मांगे हैं। हमें इन बातों को विद्यालयों के प्रबंधन के साथ बांट कर विद्यालय में ऐसी प्रक्रिया आरम्भ करने की आवश्यकता है, जिसमें अध्यापकों को भी इन मुद्दों पर चर्चा के लिए निमन्त्रित किया जा सके।

तथा पर्यावरण का हिस्सा बनाने के लिए, यह महत्त्वपूर्ण होगा कि हम ऐसे संभावित हस्तक्षेप क्षेत्रों के बारे में विचार करें, जिनके बारे में यह आवश्यक नहीं कि वे असहमति के बिन्दु हो और जो आरंभ में तो जटिल हो सकते हैं, किन्तु धीरे–धीरे सभी संस्कृतियों के प्रति आदरभाव की ओर ले जाने में समर्थ हों। इनकी सहायता से उन संघर्षों को भी मदद मिल सकती है जो कि समाज में आज व्याप्त असमानता के खिलाफ हैं।

## कौन से मुद्दें लें :

हमारे द्वारा लड़ी जाने वाली लड़ाइयों और जिन संघर्षों को हम हाथ में ले सकते हैं, उनका चयन करते समय इन सभी मुद्दों के बारे में हमें स्पष्ट

**अच्छी शिक्षा यह मांग करती है कि विद्यालय तथा छात्र स्वयं अपने लिए और साथ ही दूसरों के लिए काम करें। वे यह महसूस करें कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है तथा जीवन का उद्देश्य मात्र दूसरे बच्चों के साथ स्पर्धा करना नहीं, किन्तु सहयोग करना है, जिससे कि दोनों के जीवन अस्तित्व में सुधार लाया जा सके।**

## सभी में बराबरी :

अच्छी शिक्षा यह मांग करती है कि विद्यालय तथा छात्र स्वयं अपने लिए और साथ ही दूसरों के लिए काम करें। वे यह महसूस करें कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है तथा जीवन का उद्देश्य मात्र दूसरे बच्चों के साथ स्पर्धा करना नहीं, किन्तु सहयोग करना है, जिससे कि दोनों के जीवन अस्तित्व में सुधार लाया जा सके। विद्यालय एक ऐसा स्थान है, जिसकी देखरेख सभी को करनी होती है और इसके सुधार में सहभागी बनना होता है। ऐसा नहीं है कि जैसे समुदाय और विद्यालय एक दूसरे का सामना कर रहे हों और विद्यालय के मूल्य, बच्चे और अध्यापक समाज की संस्कृति से पूर्णतः भिन्न प्रकार के हों। विद्यालय को संस्कृति होना होगा। वे ऐसे मुद्दे होंगे, जिनसे लोगों को निकट लाने का हमें कुछ अवसर मिल सकेगा। और जैसा कि गांधीजी ने कहा है कि किसी व्यक्ति को नीचा नहीं दिखाना है, अपितु सभी को इस बात के प्रति प्रेरित और प्रोत्साहित करना है कि वे परस्पर सहयोग करें और यह महसूस करें कि इस सुधार एवं संघर्ष से उन्हें भी सहायता मिलेगी।

अन्य महत्वपूर्ण कार्य हैं, शिक्षा के बारे में उपलब्ध ज्ञान को पकड़ना व उसका विश्लेषण करना। वह सारा ज्ञान जो भारत में और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सृजित हुआ है, उसकी समझना जरूरी है। ऐसे संस्थान जो बुनियादी शिक्षा के दर्शन में विश्वास रखते हैं, उन्हें ऐसे शोध कार्य हाथ में लेने चाहिए, जिससे कि हमारे समक्ष यह स्पष्ट हो सके कि क्या

करना है और साथ ही हमें इसके कारण अथवा आधार समझने में सहायता मिल सके। इस शोध के माध्यम से अच्छी शिक्षा अर्थात् बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों का कक्षा–कक्ष तथा विद्यालयों में उपयोग करने हेतु उपयुक्त प्रक्रियाएं व रास्ते भी विकसित होने चाहिए। हमें उस संरचना और उन प्रक्रियाओं को समझना होगा, जिनके द्वारा लोगों को इसके सिद्धान्तों को समझाया जा सकेगा और उन्हें इसके मूल अभिप्रायों के अनुरूप चलने के महत्व को भी महसूस कराया जा सकेगा। हमें यह भी समझना होगा कि यह सब बाहर से नहीं थोपा जा सकता। स्वतन्त्रता आंदोलन की भांति हमें भी एक कार्यनीति विकसित करनी पड़ेगी, जिससे कि शैक्षणिक पृष्ठभूमि के साथ–साथ इसका एक अलग मुद्दा बन सके और इसके लिए आवश्यक सभी साजो–सामान जुटाया जा सके।

## उच्च व तकनीकी शिक्षा को कैसे बदलें:

स्कूल में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को संभव बनाने के लिए अध्यापक शिक्षा में तो परिवर्तन की आवश्यकता है ही, साथ में यह भी आवश्यक है कि उच्च शिक्षा व तकनीकी शिक्षा में परिवर्तन हो। एक हद तक उच्च शिक्षा को भी विषयों की समझ वहीं से मिलती है। उच्च शिक्षा उन मूल्यों को सुदृढ़ करने में भी मदद करती है, जिन्हें वह मानती है। यह तभी हो सकता है जब उच्च शिक्षा में शामिल सभी व्यक्ति उनको महसूस करते हों। उच्च शिक्षा में भी यह अपेक्षा है कि विद्यार्थी रटी–रटाई जानकारी को परीक्षा में लिखेंगे। यह चुनौती नहीं है कि विद्यार्थी अपने विचारों को व्यक्त करेंगे, कुछ नई समस्याओं के लिए हल सोचने का प्रयास करेंगे अथवा समाज के किसी सरोकार में अपने ज्ञान का उपयोग करेंगे।

तकनीकी शिक्षा भी न तो उद्योग से जुड़ी है और न ही आम जीवन से। उनमें वास्तविक परिस्थितियों में मशीनों व औज़ारों से जूझने की बहुत कम संभावना है। नयी तकनीक, नयी मशीनें अभ्यास के लिए उपलब्ध नहीं हैं। जो कुछ सिखाया जाता है, करवाया जाता है वह चूंकि व्यावहारिक तौर पर बहुत महत्त्व नहीं रखता, इसीलिए उसका आकलन, सार्थक व सीखने वालों के लिए गंभीरता से सोचने व सीखने मौक़े नहीं देता।

विश्वविद्यालयों में साथ–साथ सीखने व कुछ करने के, बनाने के, सोचने के मौक़े बनाने की सम्भावना कई जगह टटोली जा रही है। उच्च व तकनीकी शिक्षा में 'समवाय' के अर्थ का विवेचन प्राथमिक शाला की तरह नहीं किया जा सकता। विषयों को एक साथ करना व उनके उन सिद्धान्तों को देख पाना, जो समान हैं बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन हर विषय की प्रकृति व उसकी ख़ासियत को पहचानना भी आवश्यक है। अमूर्त अवधारणाएं उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर से ही एक ऐसे प्रयास की मांग करती हैं जिसमें अवधारणात्मक ठोसपन व विषय की प्रकृति की उपयुक्त झलक हो। बुनियादी शिक्षा के प्रमुख सिद्धान्तों के अनुरूप शिक्षा को ढालने के लिए खानापूर्ति प्रदर्शन व प्रतीकों की आवश्यकता नहीं है। इससे ज़्यादा बड़ी आवश्यकता उसमें किए गए बराबरी के सिद्धान्त को व्यवहार में उतारने का प्रयास व आज के संदर्भ में शिक्षा को समग्र दृष्टि से देखने की आवश्यकता पर बल है।

## शोध करने की ज़रूरत :

आखिर में शोध के बारे में व उससे उभरे निष्कर्षों के बारे में कुछ बातें महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षा का समाज से इतना गहरा जुड़ाव है कि एक की बात दूसरे के बिना नहीं की जा सकती। बुनियादी शिक्षा का दर्शन यह चाहता है कि समाज में शिक्षा का ढंग उसके प्रमुख सिद्धान्तों पर चले। लोगों के साथ

काम करते समय इन सिद्धान्तों के अलग–अलग निहितार्थ संभव हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि हम इसको पहचानें और निर्धारित करें कि इसमें से कितने दायरे को सिद्धान्तों के अंदर मानेंगे। शोध करते समय भी किन सवालों पर हमें खोज करनी है और किस तरह से। इससे उभरा ज्ञान, मान्य ज्ञान में तभी शामिल होगा जब वह कसौटी पर खरा उतरे। इसके लिए एक ओर तो बुनियादी शिक्षा के विमर्श को हमें दन्त कथाओं व व्यक्तिगत अनुभवों के दायरे से बाहर निकालना होगा और दूसरी ओर कसौटी में भी परिवर्तन करने का प्रयास करना होगा।

बुनियादी शिक्षा का हाशिये पर जाने का मुख्य कारण जानकारी व प्रचार की कमी नहीं है। वैसे तो इस मसले पर अध्ययन की आवश्यकता है। जिस तरह से यह धीरे–धीरे सिमटी है, उससे यह कहा जा सकता है कि यह समय के अनुसार अपने आपको नहीं बदल पाई है। बुनियादी शिक्षा के दर्शन व उसके तात्कालिक स्वरूप को समयानुसार विकसित होने की आवश्यकता है। इसके मुख्य दार्शनिक सिद्धान्त और उनके संदर्भ में शिक्षा का अर्थ समझने के बाद ही हमें वह ढांचा मिलेगा, जिसकी आज के संदर्भ में व्याख्या करनी होगी। बुनियादी शिक्षा की स्वतंत्रता पूर्व की व्याख्या उस समय की परिस्थिति अनुसार थी। गांधीजी की कार्यपद्धति कुछ मूल सिद्धान्तों के इर्द–गिर्द व्यावहारिक रास्ता तय करने की थी। अपनी कार्यपद्धति और कार्य रणनीति में वह लचीलापन तो रखते थे परन्तु सिद्धान्तों के दायरे में रहते थे। उनके द्वारा चुने गए रास्ते अनुभव व परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे। किन्तु बाद में बुनियादी शिक्षा का वह स्वरूप जड़ होता गया और उसकी सैद्धान्तिक प्रासंगिकता के बावजूद व्यवहार में आम लोगों की और शिक्षा निर्धारित करने वाले लोगों की नज़र में उसका महत्त्व कम होता गया। बुनियादी शिक्षा के पनघटो ने इसके प्रकट स्वरूप को बनाए रखने पर ज़्यादा ज़ोर दिया एवं अपने आपको समाज के बदलते स्वरूप से अलग करके एक टापू बना लिया। इस टापू से निकलकर आज मुख्य ज़मीन पर जाने की ज़रूरत है।

**बुनियादी शिक्षा के पनघटों ने इसके प्रकट स्वरूप को बनाए रखने पर ज़्यादा ज़ोर दिया एवं अपने आपको समाज के बदलते स्वरूप से अलग करके एक टापू बना लिया। इस टापू से निकलकर आज मुख्य ज़मीन पर जाने की ज़रूरत है।**

हमारे अनुभव से स्पष्ट है कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हैं व इन्हें आज के संदर्भ में उपयोग करने के लिए ठोस कार्य व शोध की आवश्यकता है। ऐसे संस्थानों की ज़रूरत है, जो शिक्षा के हर पहलू पर विचार करने के साथ–साथ उद्यमों पर भी विचार कर सकें। अवधारणाओं का वह स्वरूप जो उद्यमों और समाज के अनुभवों को शामिल कर सकता है, उसे हम सामने ला सकें।

रिपोर्ट

# नई तालीम पुनः सशक्तिकरण, केन्द्राभिमुखिकरण और क्रियान्विति

## राष्ट्रीय सम्मेलन – 28–29 अगस्त 2010
## संक्षिप्त रिपोर्ट

★ भागचन्द्र कुमावत

भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय के 'राष्ट्र ग्रामीण संस्थान परिषद' ने दिनांक 28–29 अगस्त 2010 को दिल्ली में गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के 'सत्याग्रह सभागार' में ''नई तालीम का पुनः सशक्तिकरण, केन्द्राभिमुखिकरण और क्रियान्विति'' पर दो दिवसीय एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में बुनियादी तालीम के पुनः सशक्तिकरण के संबंध में विभिन्न मुद्दों पर सत्रवार चर्चा की गई और पर्चे प्रस्तुत किए गए। इस राष्ट्रीय सम्मेलन में हुई चर्चा एवं विमर्श का उल्लेख संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

### प्रथम दिन, सम्मेलन का उद्घाटन सत्र

इस सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में एन.सी.आर.आई. के सभापति डॉ. एस.वी. प्रभात की ओर से एन.सी. आर.आई. के उपसभापति श्री पी.वी. राजगोपाल ने सम्मेलन के प्रतिभागियों का हार्दिक स्वागत करते हुए इस सम्मेलन के आयोजन की रूपरेखा प्रस्तुत की। श्री राजगोपाल ने अपने उद्बोधन में कहा कि एन.सी.आर.आई. का मुख्य लक्ष्य देश की ग्रामीण संस्थाओं को सक्रिय करना और उनका पुनर्निर्माण करना है। इस सम्मेलन के आयोजन का प्रयोजन देश की नई तालीम से सम्बन्धित संस्थाओं, विचारकों और अभ्यासकर्त्ताओं को नई तालीम के मुद्दों के संदर्भ में विचारों के आदान–प्रदान करने के लिए एक सामान्य मंच पर लाना है। उन्होंने कहा कि मुझे आशा है इन दो दिनों में, देश की विभिन्न नई तालीम की संस्थाओं से आए 350 से भी अधिक प्रतिनिधियों के सहयोग और मंथन से एन.सी.आर. आई. को एक नई दिशा मिलेगी।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति व भारत रत्न डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया। उद्घाटन के अवसर पर महात्मा गांधी के बुनियादी तालीम पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने जीवन और करियर के विभिन्न अनुभवों का उदाहरण देते हुए विचारोत्तेजक बात की और कहा कि शिक्षा बहुआयामी है। शिक्षा के तीन मुख्य आयाम हैं – प्रथम, जीवन में सदाचार का प्रवेश, दूसरा रचनात्मकता का प्रवेश और तीसरा, आत्मविश्वास का निर्माण। मैं 'इसको कर सकता हूं' यह 'हम इसको करेंगे' और 'राष्ट्र इसको करेगा' की ओर ले जाएगा। भारत के युवा में अगर आत्मविश्वास है तो भारत एक मजबूत राष्ट्र बन सकता है। जब व्यक्ति में नैतिकता और मूल्य सन्निहित होते हैं, तो इसके तीन महत्त्वपूर्ण आयाम होने चाहिए। प्रथम, हर एक के पास एक श्रेष्ठ आत्मा होनी चाहिए। दूसरा, हृदय में सदाचार और तीसरा, हर एक का बेहतर जीवन होना चाहिए। गांधी ने एक अगुवा के रूप में स्वयं के जीवन का हमारे सामने उदाहरण प्रस्तुत किया और वे दुःख

★ विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, रामगिरि, उदयपुर (राज.) में कार्य करते हैं।

और पीड़ा से कभी भयभीत नहीं हुए थे। गांधी ने रचनात्मक दिमाग़ विकसित करने की मांग की थी। लेकिन रचनात्मकता को कैसे रचित किया जाए? इसका एक रास्ता है – रचनात्मक कक्षा कक्ष के द्वारा, जहां विद्यार्थियों को रचनात्मक होने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और जहां वे स्वयं आत्मविश्वास अर्जित कर सकें। यह भावना कि 'मैं यह कर सकता हूं' को हर एक के दिमाग में गहरी जड़ जमानी चाहिए। स्कूल की कैसी भूमिका होनी चाहिए? इस संदर्भ में स्कूल में शिक्षकों की क्षमताओं को बढ़ा कर, स्कूल में रचनात्मकता के

**गांधी ने रचनात्मक दिमाग़ विकसित करने की मांग की थी। लेकिन रचनात्मकता को कैसे रचित किया जाए? इसका एक रास्ता है – रचनात्मक कक्षा कक्ष के द्वारा, जहां विद्यार्थियों को रचनात्मक होने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और जहां वे स्वयं आत्मविश्वास अर्जित कर सकें। यह भावना कि 'मैं यह कर सकता हूं' को हर एक के दिमाग़ में गहरी जड़ जमानी चाहिए।**

बुलबुले उठाकर और स्कूल में सीखने के वातावरण को पल्लवित व पोषित करने से यह सब प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षक को एक शुद्धता का जीवन जीने की ज़रूरत है। उसमें सभी विद्यार्थियों को सफ़ल बनाने में, शिक्षण करने की क्षमता होनी चाहिए। विद्यार्थियों में, इस प्रकार की क्षमता का निर्माण करना जो कि व्यवस्था को हमेशा के लिए पोषित करती रहे। माता–पिता और यहां तक कि शिक्षक एक विद्यार्थी में आत्मिक वातावरण को भर सकता है।

उन्होंने नई तालीम के पुनः सशक्तिकरण के लिए हम क्या कर सकते हैं? पर सुझाव देते हुए बताया कि –

1. हमें बुनियादी शिक्षा का, एक राष्ट्र के रूप में स्वरूप बनाना है जो कि रचनात्मकता को प्रोत्साहित करे।
2. हमारी शिक्षा को शुरूआती चरण से वर्तमान की तकनीकी प्रवृत्ति के साथ ही समकालीन होना चाहिए और उसे आज के संचार के उपकरणों के उपयोग को बढ़ाना चाहिए।
3. ऐसी रणनीतियां बनाना जिससे हमारे युवाओं की सामाजिक सहभागिता बढ़े और वे हमारे गांवों की सेवा कर सकें।
4. एक समग्र कदम के रूप में, स्थिर विकास को बढ़ावा देने के संदर्भ में, सम्मिलित रूप से सशक्तिकरण के लिए पी.यू.आर.ए. (ग्रामीण क्षेत्र में, शहरी खुशहाली जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराना) की तरह के अभियान चलाना है।
5. नई तालीम और पारम्परिक शिक्षा के मध्य ऐसा संयोजन उत्पन्न करना जो कि ज्ञानवादी समाज का मूल्यांकन करने में मदद करे।
6. जमीनी स्तर पर काम करने वाले सक्षम शिक्षकों की संख्या बढ़ाना।
7. मूल्य आधारित शिक्षण के माध्यम से आत्मप्रकाशित नागरिकों का विकास करना।
8. नई तालीम के द्वारा हमारी भ्रष्टाचार की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, उत्पीड़न की और सामाजिक अस्थिरता जैसी समस्याओं का हमें

उत्तर उपलब्ध कराना चाहिए ताकि नई तालीम उन्हें सबसे प्रभावकारी तरीके से सम्बोधित कर सके।

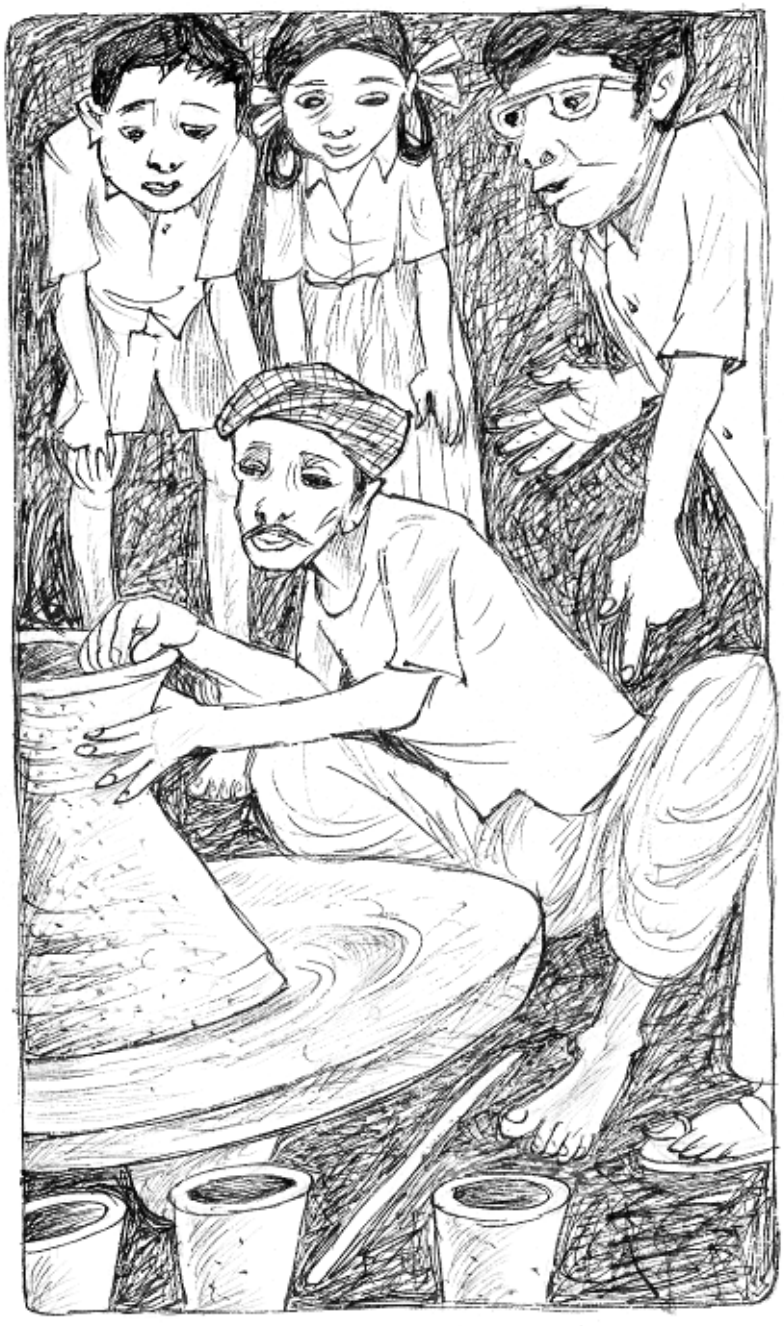

इस सम्मेलन के केन्द्रीय विचार को प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीय गांधी म्यूज़ियम के पूर्व निदेशक, रेल्वे बोर्ड के पूर्व सभापति और प्रमुख गांधीवादी विचारक डॉ. वाई.पी. आनन्द ने महात्मा गांधी के दक्षिणी अफ्रीका में किए गए प्रयोगों का उल्लेख करते हुए कहा कि भारत की और विदेश की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था 'शांति निकेतन' से महात्मा गांधी ने अपनी यात्रा शुरू की थी। महात्मा गांधी ने 1937 में अपनी नई तालीम की योजना में प्राथमिक शिक्षा में उद्योग की शिक्षा और कौशल का प्रशिक्षण आदि को सम्मिलित किया था। गांधी ने उस शिक्षा के बारे में बात की थी, जो कि स्वावलम्बन को बढ़ाएगी और एक अच्छे इन्सान के निर्माण को समृद्ध करेगी। 1909 में 'हिन्द स्वराज' में गांधी ने स्पष्ट रूप से शिक्षा पर अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने 'दिमाग, हृदय और हाथ'के माध्यम से शिक्षा होनी चाहिए पर बल देते हुए कहा कि प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। शिक्षा को समाज में सकारात्मक बदलाव करने और चरित्र निर्माण की पहल करनी चाहिए। आज नई तालीम को पुनःनिर्मित करने की ज़रूरत है। भारत में 2002 में शिक्षा एक मौलिक अधिकार बन गया। बुनियादी शिक्षा आज उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी गांधी के

समय में थी। हमारी शिक्षा व्यवस्था में सुधार करने की ज़रूरत है, उसे कला और उद्योग को बढ़ावा देने के साथ बच्चे को व्यावसायिक प्रशिक्षण देना चाहिए।

उद्घाटन के अवसर पर एन.सी.आर.आई. के द्वारा हिन्दी में प्रकाशित पुस्तक 'नई तालीम : नया परिप्रेक्ष्य' तथा अंग्रेज़ी में प्रकाशित 'पर्सपेक्टीव ऑन नई तालीम' का समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के द्वारा विमोचन किया गया। ये दोनों पुस्तकें वर्तमान में देश में नई तालीम की स्थिति और उससे जुड़े मुद्दों पर प्रकाश डालती हैं।

## प्रथम सत्र

इस राष्ट्रीय सम्मेलन में चर्चा का पहला सत्र ''नई तालीम का मुख्यधारा की शिक्षा से जुड़ाव'' पर केन्द्रित था। इस सत्र के सभापति एन.सी.ई.आर.टी. के पूर्व निदेशक प्रो. कृष्णकुमार और उपसभापति श्री पी.वी. राजगोपाल थे। इस चर्चा के प्रथम वक्ता 'नई तालीम संघ' सेवाग्राम, वर्धा के श्री कनकमल गांधी ने मुख्यधारा की शिक्षा से नई तालीम के जुड़ाव के मुद्दे पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि बुनियादी तालीम में काम आधारित शिक्षा है और इसका दर्शन जीवन से जुड़ा है। इसकी जो ख़ासियत है उसको समझने की ज़रूरत है। बुनियादी तालीम की बातें और जो उद्देश्य हैं, वे सब वर्तमान मुख्यधारा की शिक्षा के ढांचे में संभव नहीं हो सकते। यह वर्तमान समय की समस्याओं को हल कर सकती है, निदान करने में मदद कर सकती है। इसकी बुनियाद सत्य और अहिंसा है। नई तालीम कहीं भी समझौता नहीं करती है। आज की शिक्षा व्यवस्था को उससे सीखने की ज़रूरत है।

इस सत्र की दूसरी वक्ता 'मगन संग्रहालय समिति' वर्धा की अध्यक्षा श्रीमती विभा गुप्ता थी। उन्होंने अपने विचार को अभिव्यक्त करते हुआ बताया कि नई तालीम ग्राम्य स्वावलम्बन और सशक्तिकरण का एक ज़रिया है, एक पद्धति है। पारम्परिक परिवार के काम–धन्धे कम होते जा रहे हैं, ग्रामीण शिल्पकार पीछे हटते जा रहे हैं और बाज़ारी ताकतों व वैश्विकरण से समस्याएं और अधिक विकट और जटिल होती जा रही हैं। नई तालीम को स्वनिर्भरता को बढ़ाना चाहिए, रचनात्मकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। गांवों को नष्ट नहीं करना हैं, वरन् उनका पुनर्निर्माण करने की ज़रूरत है। शिक्षा को कामगारों और किसानों को लाभ पहुंचाना चाहिए और उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि हमें विशेषतौर से कामगारों और उनकी ज़रूरतों को समझने की ज़रूरत है।

**आज मनुष्य को भ्रम हो गया है कि वह सृष्टि का मालिक है। आज हमारे जीवन की सारी समस्याओं की जड़ हमारी जीवन शैली है। हमारी जीवन शैली इसके लिए उत्तरदायी है। आज की मुख्य धारा की शिक्षा, बुनियादी तालीम के साथ जुड़ जाए तभी शिक्षा का सही अर्थ होगा और हमारी आज की समस्याओं का हल निकल पाएगा।**

सत्र के तीसरे प्रस्तुतकर्त्ता 'लोक भारती' ग्रामविद्यापीठ सनोसरा, गुजरात के हंसमुखभाई देवमुरारी थे। उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया कि पर्यावरणीय असंतुलन और आतंकवाद आज की मुख्य समस्या है। आज मनुष्य को भ्रम हो गया है कि वह सृष्टि का मालिक है। आज हमारे जीवन

की सारी समस्याओं की जड़ हमारी जीवन शैली है। हमारी जीवन शैली इसके लिए उत्तरदायी है। इस संदर्भ में उन्होंने विस्तृतरूप से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि आज की मुख्य धारा की शिक्षा, बुनियादी तालीम के साथ जुड़ जाए तभी शिक्षा का सही अर्थ होगा और हमारी आज की समस्याओं का हल निकल पाएगा। आज नई तालीम प्रासंगिक है। आज की सभी समस्याओं का समाधान नई तालीम में है। बुनियादी शिक्षा का भविष्य उज्जवल है।

इस सत्र के चौथे वक्ता गुजरात विद्यापीठ के कुल सचिव राजेन्द्र भाई खीमाणी थे, जिन्होंने 'गूजरात विद्यापीठ' अहमदाबाद के विद्यार्थियों की ग्राम पदयात्रा का उल्लेख करते हुए बताया कि विद्यार्थी गांव में जा कर वहां की परिस्थिति और जीवन के बारे में अध्ययन करते हैं, उसको समझते हैं, सीखते हैं और अनुभव प्राप्त करते हैं। उन्होंने बताया कि ग्राम शिल्पी कार्यक्रम के अन्तर्गत विद्यार्थी गांव में बैठ कर काम करते हैं। विद्यार्थियों के सामने 8–10 उद्योगों का विकल्प देते हैं, उनमें से वे अपनी मर्ज़ी के उद्योग को चुनते हैं। जो लोग उद्योग चुनते है वह बाज़ार में जाने के लिए नहीं हैं, वरन् अपने लिए ही करते हैं। शिक्षा में बुनियादी तालीम की अपनी ज़गह है, उसे किसी के साथ मिलने की ज़रूरत नहीं है।

इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे प्रो. कृष्ण कुमार ने सत्र के सब वक्ताओं का सार– संक्षेप प्रस्तुत करते हुए कहा कि हम जिस ऐतिहासिक परिस्थिति में जी रहे हैं वो हमारे लिए बहुत चुनौतीपूर्ण है। गांधीजी का शिक्षा और लोकतंत्र का सपना रचनाशीलता और कल्पनाशीलता लिए हुए है। उसे हमें उनके शिक्षा के विचार के संदर्भ में देखना चाहिए। आज भारत में स्त्री–पुरूषों के बीच हिंसा है और हमारी सारी व्यवस्थाएं बेकार हो गयी हैं। आज के संदर्भ में गांधीजी की नई तालीम को समझने और उसे नए सिरे से परिभाषित करने की ज़रूरत है। गांधी एक गतिशील चिन्तक थे, जो हर नई परिस्थिति में अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन करने के लिए तैयार रहते थे।

**गांधीजी बुनियादी तालीम में कामवाले (मिस्त्री) और शास्त्रवालों, (इंजीनियर) इन दोनों को जोड़ना चाहते थे। आज कामवाले काम जानते हैं और काम करते हैं, श्रम करते हैं लेकिन उनके पास शास्त्र नहीं है। इसी तरह शास्त्रवालों के पास शास्त्र का ज्ञान तो है, लेकिन वे काम नहीं जानते हैं और काम नहीं करते। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से सभी पीड़ित है।**

## दूसरा सत्र

पहले दिन का दूसरा सत्र ''वर्तमान में नई तालीम की स्थिति, समस्या और दृष्टि पर पुनर्विचार'' पर था। इस सत्र की अध्यक्षता गांधी शांति प्रतिष्ठान दिल्ली की अध्यक्षा सुश्री राधाबेन भट्ट ने इस सत्र के प्रथम वक्ता नई तालीम समिति, सेवाग्राम वर्धा के मंत्री श्री शिवदत्त मिश्र ने इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि करते–करते सीखना नई तालीम है। आज कोई भी स्कूल नई तालीम के दायरे में नहीं है। भारत में एक भी नई तालीम का स्कूल नहीं है। आज स्कूल का मतलब एक 'मॉल' की तरह है। मॉल एक बड़ी जगह है, जहां सभी सामान एक स्थान पर मिलते हैं। गांधीजी बुनियादी तालीम में कामवाले (मिस्त्री) और शास्त्रवालों

(इंजीनियर) इन दोनों को जोड़ना चाहते थे। आज कामवाले काम जानते हैं और काम करते है, श्रम करते हैं लेकिन उनके पास शास्त्र नहीं है। इसी तरह शास्त्रवालों के पास शास्त्र का ज्ञान तो है, लेकिन वे काम नहीं जानते हैं और काम नहीं करते। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से सभी पीड़ित है। नई तालीम का दायरा बहुत बड़ा है। स्कूल के बाहर शिक्षा है। 'हिन्द स्वराज' की जड़ें बहुत गहरी हैं। बुनियादी शिक्षा, शिक्षा की एक पद्धति से भी ज्यादा है। एक जीवन वृत्ति है जो पूरे समाज को समेटे हुए है। बुनियादी शिक्षा में समग्रता है। बुनियादी शिक्षा में शिक्षा को टुकड़ों–टुकड़ों में नहीं बांटा गया है। बुनियादी शिक्षा क्यों, क्या और कैसे का दर्शन है।

**आज देश में हर जगह गलाकाट प्रतिस्पर्धा है और किसी भी ज़गह सहकार की बात नहीं हो रही है। शिक्षा में मैकॉले को कोसने से कोई अर्थ नहीं है। इस व्यवस्था में मैकॉले का कोई दोष नहीं है। सारा दोष हमारा है। बुनियादी तालीम के साथ जो अन्याय हुआ है, उसे हमें याद रखना चाहिए। बुनियादी तालीम की मान्यता का सवाल है। हमारी खुद की सरकार बुनियादी शिक्षा को मान्यता नहीं देती है तो बुनियादी तालीम वाले कहां जाए? यह एक विडम्बना है हमारे सामने।**

इस सत्र के दूसरे वक्ता, मनसुखभाई सल्ला थे, जिन्होंने कहा कि आज की पूरी शिक्षा व्यवस्था हिंसा की तरफ़ जाने वाली है। आज के मल्टीडिसीप्लेनरी सिस्टम में समग्रता कैसे लाएं? यह समस्या है। उसमें परिश्रम का गौरव कैसे स्थापित करें। गुजरात में आज 1400 बुनियादी, उतर बुनियादी और उच्च शिक्षा की संस्थाएं हैं। लेकिन इनमें से 50 प्रतिशत संस्थाएं मुख्यधारा की शिक्षा देनेवाली है और शेष 50 प्रतिशत में आज भी बुनियादी तालीम का काम हो रहा है। आज की स्मृति आधारित शिक्षा को कैसे सुधारा जाए, यह मुख्य सवाल है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर प्रयोग करने वाली संस्थाओं को स्वायत्तता देनी चाहिए। लेकिन आज के तंत्र की रचना ऐसी है, जो संस्थाओं की स्वायत्ता को खत्म करती है। हमें मूल्यांकन का तरीका बदलना होगा। आज ज़रूरत रूरल इन्स्टीट्यूट और रूरल युनिवर्सिटी बनाने की है। बुनियादी तालीम के विस्तार के लिए एन.सी. आर.आई. को हर राज्य से 5–10 प्रतिनिधियों को बुलाकर एक संगोष्ठी रखनी चाहिए, जिसमें इसके विस्तार की रणनीति बनाई जाए।

इस सत्र के अगले वक्ता 'गुजरात नई तालीम संघ' अहमदाबाद के मंत्री जेसंगभाई डाभी ने कहा कि भारत में बुनियादी तालीम को लागू करने का केन्द्र सरकार निर्णय करे। इसके लिए केन्द्र सरकार से अपील की जाए। इस सत्र के अंतिम वक्ता 'सिद्ध' संस्था मसूरी, उत्तराखण्ड के पवन कुमार गुप्ता ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आज घर और स्कूल में दूरी बढ़ रही है। घर के व्यवहार व मूल्य से स्कूल के मूल्य और व्यवहार अलग हैं। उन्होंने 'विकास' की अवधारणा पर बोलते हुए कहा कि गांधी ने कभी 'विकास' शब्द का उपयोग नहीं किया। यद्यपि उन्होंने तो शरीर के विकास, मानसिक विकास और चरित्र के विकास के रूप में बात की

है। लेकिन आज हमारे ऊपर राजनैतिक रूप से विकास और पिछड़ेपन की अवधारणा भूत की तरह सवार है। जहां सड़क, बिजली, रेल, पानी पहुंच गया, वहां विकास है और जहां नहीं पहुंचा वह क्षेत्र पिछड़ा है। आज की शिक्षा ने हमें नकलची बना दिया है। अंत में सत्र की अध्यक्षा राधाबेन भट्ट ने सत्र के विषय पर टिप्पणी करते हुए कहा कि हमें अर्थ आधारित शिक्षा की ज़रूरत है। आज की सभी समस्याओं का हल हमें बुनियादी शिक्षा में मिलता है। श्रम में शिक्षक का बच्चों के साथ जुड़ना ज़रूरी है। घर और स्कूल के रोज़मर्रा के कामों में स्वावलम्बन ज़रूरी है। देशव्यापी स्वावलम्बन की बात है। देश में आज पहले से अधिक ग़ुलामी है। आज हम व्यवस्था के ग़ुलाम हैं, अंग्रेज़ी भाषा के ग़ुलाम हैं। हमारा समुदाय और समाज, जल, जंगल और ज़मीन के लिए असुरक्षित है। आज देश में हर जगह गलाकाट प्रतिस्पर्धा है और किसी भी ज़गह सहकार की बात नहीं हो रही है। शिक्षा में मैकॉले को कोसने से कोई अर्थ नहीं है। इस व्यवस्था में मैकॉले का कोई दोष नहीं है। सारा दोष हमारा है।

बुनियादी तालीम के साथ जो अन्याय हुआ है, उसे हमें याद रखना चाहिए। बुनियादी तालीम की मान्यता का सवाल है। हमारी खुद की सरकार बुनियादी शिक्षा को मान्यता नहीं देती है तो बुनियादी तालीम वाले कहां जाए? यह एक विडम्बना है हमारे सामने। एन.सी.आर.आई. को बुनियादी तालीम के शिक्षक–प्रशिक्षण का काम करना चाहिए। आज मातृभाषा में शिक्षा का गंभीर सवाल है।

## सम्मेलन का दूसरा दिन : प्रथम सत्र

सम्मेलन के दूसरे दिन की प्रथम सत्र की चर्चा ''नई तालीम के लिए नीतिगत ढांचा और वित्तीय सहारे का स्वरूप विकसित करने'' पर केन्द्रित थी। इस सत्र की अध्यक्षता भारत सरकार के 'मानव संसाधन मंत्रालय' के अतिरिक्त सचिव सुनिल कुमार ने की थी। सत्र के प्रथम वक्ता पश्चिमी बंगाल के 'मज़िहिरा नेशनल बेसिक एज्यूकेशन संस्थान' के प्रसाद दास गुप्ता ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा कि आज की कई समस्याओं का हल हमें नई तालीम में मिल सकता है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि शिक्षा मानव का निर्माण करती है, देश का निर्माण करती है। वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था हमारे वास्तविक उद्देश्य को पूरा नहीं करती है। नई तालीम ग्रामीणोन्मुखी और ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखती है। नई तालीम हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति होनी चाहिए। एक स्वतंत्र नीति होनी चाहिए जो भारत की ज़रूरतों को पूरा करने पर केन्द्रित हो। इस दिशा में एक राष्ट्रीय अभियान चलाया जा सकता है।

इस सत्र के दूसरे वक्ता 'महात्मा गांधी इन्स्टीट्यूट फॉर इण्डस्ट्रेलाइजेशन' वर्धा, के निदेशक टी. करूणाकरण ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि गांधी का ग्राम स्वराज और नई तालीम का विचार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों एक ही हैं। नई तालीम एक बड़ा दायरा है और आज सरकार जो शिक्षा कर रही है वह एक छोटे दायरे में है। उन्होंने एक उदाहरण देते हुए कहा कि डेनमार्क देश में एक 'डेनिस वेलेकिलेड फोक हाई स्कूल' है, जिसमें सेल्फ रिलाइन्स है। वहां जीवन के द्वारा शिक्षा होती है। इसी तरह यू.एस.ए. में एज्यूकेशनल इनोवेशन लेण्ड ग्रान्ड युनिवर्सिटी सिस्टम है। इस युनिवर्सिटी में श्रम की महत्ता है। यू.एस.ए. की शिक्षा में श्रम का गौरव है, श्रम के प्रति प्रतिष्ठा है। वहां शिक्षक को गुरू का दर्ज़ा दिया गया है। वहां समस्या निदान शिक्षा है, संदर्भित ज्ञान और सीखने की व्यवस्था है। वहां 'नेबरहुड

स्कूल' की अवधारणा है। गांधी की योग, उद्योग और सहयोग की शिक्षा है। डेनमार्क भारत से भी आगे है। नई तालीम को देश में आगे बढ़ने का कोई अवसर ही नहीं दिया गया, इसलिए उसके फैलने का कोई सवाल ही नहीं है। उन्होंने शिक्षा के बारे में विनोबा भावे के विचार को प्रस्तुत करते हुए कहा कि बच्चा थोड़ा पढ़े तो काम छोड़े, अधिक पढ़े तो गांव छोड़े और बहुत अधिक पढ़े तो देश छोड़े। उनका विचार था कि हमें गांधी के विचार के अनुसार आज इसका उल्टा करना है। बुनियादी तालीम या अच्छी शिक्षा में थोड़ा पढ़े तो काम से जुड़े, अधिक पढ़े तो गांव से जुड़े और बहुत अधिक पढ़े तो देश से जुड़े। आज देश में रूरल युनिवर्सिटी होनी चाहिए।

इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे श्री सुनिल कुमार ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आज भारत देश में 13 करोड़ बच्चे स्कूल जाते हैं। इतने बच्चे डेनमार्क, ब्राजील और जापान देश की कुल जनसंख्या के बराबर है। 1953 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल ने बुनियादी शिक्षा पर काफी गंभीर बात की थी। अब केन्द्रीय सरकार 'शिक्षा के अधिकार' के संदर्भ में अगले 5 वर्षों में 20 लाख 36 हजार करोड़ रूपए खर्च करने वाली है। मैदानी स्तर पर बुनियादी तालीम की ऐसी आवाज़ उठायी जानी चाहिए, जिससे सरकार और शासनतंत्र उसे मानने के लिए बाध्य हो जाए। आज 'ज्ञानात्मक समाज' की बात की जा रही है। असल में हमें दिल, दिमाग और दक्षता की शिक्षा की ज़रूरत है, जैसा कि बुनियादी तालीम के दर्शन में परिलक्षित है। दिल, दिमाग और दक्षता ये तीनों ऊपर–नीचे हो सकते हैं। नई तालीम के लिए हमारी तैयारी होनी चाहिए।

## दूसरा सत्र

इस सत्र में ''बुनियादी तालीम के पाठ्यक्रम के विकास और शिक्षक शिक्षा'' पर चर्चा की गई। सत्र की अध्यक्षता 'इन्दिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय', दिल्ली, राजनीति विज्ञान के प्रो. डी. गोपाल ने की थी। सत्र के प्रथम वक्ता प्रो. विनोद रैना ने नई तालीम के बारे में तीन मत होने का खुलासा करते हुए बताया कि प्रथम, नई तालीम के सिद्धान्तों पर आज दिन तक किसी ने भी सवाल नहीं उठाए हैं, लेकिन लोग निरन्तर रूप से उसकी उपेक्षा करते रहें हैं। दूसरा, नई तालीम के लोग उसे उसी रूप में बनाए रखने का पूर्वाग्रह रखते हैं और तीसरा, नई तालीम के प्रयोग केवल नई तालीम के विद्यालयों और संस्थाओं में होते हैं। इसके प्रयोग मुख्य धारा की शिक्षा में होने चाहिए। तभी बुनियादी तालीम का व्यापीकरण हो पाएगा और यह जन सामान्य की शिक्षा का दर्ज़ा प्राप्त कर पाएगी। इसके लिए एक सामाजिक क्रान्ति करने की ज़रूरत है, एक आन्दोलन चलाना पड़ेगा। तभी सरकार और समाज उसे

**नई तालीम के सिद्धान्तों पर आज दिन तक किसी ने भी सवाल नहीं उठाए हैं, लेकिन लोग निरन्तर रूप से उसकी उपेक्षा करते रहें हैं। दूसरा, नई तालीम के लोग उसे उसी रूप में बनाए रखने का पूर्वाग्रह रखते हैं और तीसरा, नई तालीम के प्रयोग केवल नई तालीम के विद्यालयों और संस्थाओं में होते हैं। इसके प्रयोग मुख्य धारा की शिक्षा में होने चाहिएं। तभी बुनियादी तालीम का व्यापीकरण हो पाएगा और यह जन सामान्य की शिक्षा का दर्ज़ा प्राप्त कर पाएगी।**

स्वीकार करेगा। आज देश और दुनिया में ज्ञान आधारित शिक्षा की तिज़ारत हो रही है। ज्ञान का बाज़ारीकरण हो रहा है। ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था का बोलबाला है, जबकि अर्थव्यवस्था आधारित ज्ञान होना चाहिए। ज़ाकिर हुसैन ने भी अर्थव्यवस्था आधारित शिक्षा की बात की थी। उन्होंने सवाल उठाया कि क्या नई तालीम के सिद्धान्तों को हम आज की शिक्षा में ला सकते हैं? हां, इसके लिए हमारे पास ज़मीन हैं। इसका सोच–समझकर इस्तेमाल कर सकते है। इसका उदाहरण है एन.सी. एफ. 2005। इसमें नई तालीम के सभी अंश विद्यमान हैं। एन.सी.एफ. ने कहा है कि बच्चे के ज्ञान के आधार पर हमारा पाठ्यक्रम बनना चाहिए। बच्चे के ज्ञान को कैसे कक्षा में लाएं? मातृभाषा के माध्यम से बच्चे को ज्ञान प्राप्त हो। देश के सभी बच्चों को समान अवसर और संसाधन जैसी न्यूनतम सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए। शिक्षा के लोक व्यापीकरण के लिए विवाद हो सकता है। गांधी ने शिक्षा के लोक व्यापीकरण के लिए बात करते हुए कहा था कि शिक्षा को स्वयं वित्त पोषित होना चाहिए। कमा कर सीखने और हाथ, दिमाग और हृदय के शिक्षा शास्त्र की बुनियादी शिक्षा में बात की थी। लेकिन उनके जाने के 62 वर्ष बाद आज भारत में शिक्षा के समाज में व्यापीकरण के बारे में 'शिक्षा के अधिकार' का कानून आया है। यह गांधी के शिक्षा के विचारों का परिणाम है। यह 'शिक्षा का कानून' वैकल्पिक शिक्षा के नमूनों को रोकता नहीं है। इस कानून में (शिक्षा के अधिकार का कानून) स्कूल की एक न्यूनतम परिभाषा हुई है। कक्षा की परिभाषा और शिक्षक की योग्यता और संख्या का निर्धारण होना शेष है। इस कानून में पाठ्यक्रम के आधार पर सीखने–सिखाने की सामग्री और पाठ्यपुस्तक उपलब्ध होगी। शिक्षा के अधिकार में इन सब बातों को रखा गया है। इस व्यवस्था में फेल और पास होने की व्यवस्था नहीं है। बुनियादी तालीम के प्रयोग कुछ सरकारी और निजी स्कूल में भी हो सकते हैं।

इस सत्र के दूसरे वक्ता प्रो. जी. मिश्रा ने बाज़ारवादी अर्थव्यवस्था और लाभ कमाने की प्रवृत्ति को समाज के लिए हानिकारक बताया और कहा कि आज समाज में सहकार की ज़रूरत है। लेकिन आज दुर्भाग्य से जीवन के हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ती ही जा रही है। उन्होंने आगे बोलते हुए कहा कि आज शहरों में गांव से भी अधिक गंदी बस्तियों की समस्या है। आज अमीर और गरीब के बीच बड़ी खाई है। आज हाथ (श्रम) दिमाग़ और हृदय अलग–अलग दिशाओं में जा रहे हैं। आज की व्यवस्था में छोटे उद्योग का दम घुट रहा है।

**शिक्षा में हम कैसे अच्छे व्यक्ति का निर्माण कर सकते हैं? यह अहम् प्रश्न हमारे सामने है। अच्छे इंसान के प्रमुख गुण क्या होंगे, उस पर हमें सोचना होगा, जैसे सरलता और संवेदनशीलता आदि। लेकिन हमें ज्ञान का अह्म नहीं होना चाहिए। हमारी मुख्य समस्या 'ज्ञान देने' से हम हमारी शिक्षा को कैसे मुक्त करें? यह समस्या हमारे सामने है।**

इस विषय पर तीसरे वक्ता विद्या भवन सोसायटी के शैक्षिक सलाहकार हृदयकांत दीवान ने कहा कि सर्व प्रथम शिक्षा से हम क्या समझते हैं? से हमें बात शुरू करानी चाहिए। उन्होंने अपने व्यक्तव्य में कहा

कि गांधी ने नई तालीम को 'नई' क्यों कहा इस पर हमें विचार करना चाहिए। गांधी ने शिक्षा में सोच और व्यवहार में परिवर्तन लाने की बात की है। बुनियादी शिक्षा में गांधी ने अपने साथ समुदाय की प्रगति होने की बात की है। बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को हम आज की पाठ्यचर्या में कैसे शामिल करें? यह विचारणीय प्रश्न हमारे सामने है। शिक्षा में स्वतंत्रता और स्वायत्ता होनी चाहिए। शिक्षा में हम कैसे अच्छे व्यक्ति का निर्माण कर सकते हैं? यह अहम् प्रश्न हमारे सामने है। अच्छे इंसान के प्रमुख गुण क्या होंगे, उस पर हमें सोचना होगा, जैसे सरलता और संवेदनशीलता आदि। लेकिन हमें ज्ञान का अहम् नहीं होना चाहिए। हमारी मुख्य समस्या 'ज्ञान देने' से हम हमारी शिक्षा को कैसे मुक्त करें? यह समस्या हमारे सामने है। असल में शिक्षा तंत्र, शिक्षक–प्रशिक्षण से यह बात होनी चाहिए।

इस सत्र की चौथी वक्ता दिल्ली की 'शांति सहयोग स्वैच्छिक संस्था' की श्रीमती सुमन खन्ना अग्रवाल ने भारत की शिक्षा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बोलते हुए कहा कि 1835 में अंग्रेजों ने भारत में भ्रमण करने के बाद देखा कि भारत के लोगों में नैतिकता है, ईमानदारी है और नीति है। ऐसे में भारत को गुमराह कर आसानी से गुलाम बनाया जा सकता है। आज की शिक्षा मानवीय मूल्यों को ह्रास की ओर ले जा रही है। इसलिए शिक्षा की पाठ्यचर्या को नई तालीम की लाइन में लाने की ज़रूरत है। इस प्रकार की शिक्षा होने पर एक विद्यार्थी चरित्रवान और इन्सानियत पर विचार करने वाला होगा। सत्य, अहिंसा और सहयोग आदि जैसे महत्त्वपूर्ण मूल्यों को बढ़ावा मिलेगा। ऐसे गांधीवादी कल्बस् होने चाहिए जो उनके विचार को फैला सकें।

इस सत्र के अन्तिम वक्ता 'सर्वोदय शिक्षा समिति' देवेन्द्रपुरम, मध्य प्रदेश के श्री नरेन्द्र दुबे ने कहा कि हमें 'लोक सेवक संघ' निर्माण करने की संभावना को देखना चाहिए जैसा कि विनोबाजी उनकी स्थापना में कुछ हद तक सफल हुए थे। हमें शांति सेना संगठन और गांवों की प्रगति के लिए ग्राम स्वराज जैसे आन्दोलन चलाने की ज़रूरत है। नई तालीम में एकता लाने के लिए हमें एक साझे कार्यक्रम की ज़रूरत है। सत्र के अध्यक्ष प्रो. डी. गोपाल ने इस सत्र में की गई चर्चाओं का सार संक्षेप प्रस्तुत करते हुए कहा कि निरक्षरता, गैरबराबरी, तनाव प्रबन्धन आदि जैसे मसलों को हल करने और सम्पूर्ण सामाजिक रूपान्तरण करने के लिए आज भी गांधीजी की बुनियादी शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है और प्रासंगिक है।

**निरक्षरता, गैरबराबरी, तनाव प्रबन्धन आदि जैसे मसलों को हल करने और सम्पूर्ण सामाजिक रूपान्तरण करने के लिए आज भी गांधीजी की बुनियादी शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है और प्रासंगिक है।**

## सम्मेलन का सार एवं अनुशंसाएं

सम्मेलन का सार और अनुशंसाओं को प्रस्तुत करते हुए 'आचार्या नागार्जुन विश्वविद्यालय', आन्ध्रप्रदेश के उपकुलपति प्रो. सी.वी. राघावुलु ने कहा कि यह राष्ट्रीय सम्मेलन एन.सी.आर.आई. की यात्रा में जैसे कि 'दिमाग़ों और दिलों के मिलने' की एक अद्भुत घटना है। उन्होंने आगे कहा कि हम यहां अपने विश्लेषण व समर्पण को पुनर्बलित करने और मुख्य

धारा शिक्षा क्षेत्र के मानसिक विचारों को प्रभावित करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप हम हमारे अलग–अलग पहुंचने के रास्ते में, हम एक दूसरे के विचारों और एकमतता के अधिक निकट आए हैं और परस्पर जुड़े हैं। उन्होंने कहा इस सम्मेलन में जो अनुशंसाएं की गई हैं व हमारी चिन्ता, समस्याओं और मुद्दों पर क्रमबद्ध रूप से की गई चर्चाओं पर प्रकाश डालती हैं। उन्होंने अन्त में सम्मेलन की निम्नलिखित अनुशंसाओं को पढ़ कर सुनाया–

1. नई तालीम पर ऐसे राष्ट्रीय सम्मेलन वार्षिक रूप से एन.सी.आर.आई. एवं उसकी सहयोगी संस्थाओं के द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में आयोजित किए जाएं।
2. सम्मेलन में भागीदारी करने वाले संभागी, बुनियादी और नई तालीम के प्रवर्तक बुनियादी तालीम को पुनः अपनाने और उसके सशक्तिकरण के संदर्भ में देश के प्रधानमंत्री व मानव संसाधन मंत्रालय और अपने राज्यों के मुख्यमंत्री से मिल कर बात करें।
3. आज की शिक्षा व्यवस्था में बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों और बातों को स्थान दिया जाए।
4. नई तालीम को अपना पुनर्मूल्यांकन करने की ज़रूरत है?
5. देश में सी.बी.एस.ई. बोर्ड के समकक्ष सभी राज्यों में बुनियादी तालीम के माध्यमिक शिक्षा बोर्डों के गठन करने की पहल करनी चाहिए।
6. देश में राष्ट्रीय ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ–साथ प्रादेशिक ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना करने की पहल की जानी चाहिए।
7. नई तालीम डिप्लोमा, सर्टीफिकेट, पाठ्यक्रम आदि की मान्यता के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए।

## समापन सत्र

इस दो दिवसीय सम्मेलन के समापन सत्र के मुख्य अतिथि यू.जी.सी. के पूर्व अध्यक्ष प्रो. यशपाल थे और सत्र की अध्यक्षता एन.सी.आर.ई. के उपाध्यक्ष पी.वी. राजगोपाल ने की। प्रो. यशपाल ने अपने सम्बोधन में कहा कि तथ्य यह है कि हमारी लोक नीति निर्माण की अक्षमता रही है कि उसमें हमने प्रभावित लोगों को नीति निर्माण में शामिल नहीं किया। ताज़ा ज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए हमारे विशेषज्ञों के द्वारा कोई असरकारी भूमिका नहीं की जा रही है। उन्होंने इस संदर्भ में उदाहरण देते हुए कहा कि कृषि के बारे में हमारे किसानों को, कृषि अधिकारियों से अधिक ज्ञान है। उन्होंने कहा कि आज भारत बहुत तरक्की कर रहा है लेकिन उसके कृषि की आमदनी और उत्पादन घट रहा है। यह देश में जारी सरकारी आंकड़ों से प्रकट होता है। जबकि यह विडम्बना है कि भारत की 70% आबादी गांवों में रहती है और वह कृषि के काम में लगी हुई है। यह हमारे लिए चिन्ता की बात है। उन्होंने अपना सुझाव देते हुए कहा कि आज की इस श्रेणीबद्ध या अधिकारिक सम्बन्धों की जगह सभी स्तरों पर साथ–साथ काम करने की प्रवृत्ति और सम्बन्ध को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है। उन्होंने एन.सी.आर.आई. के द्वारा नई तालीम को आगे बढ़ाने के लिए, किए जा रहे प्रयासों की तारीफ़ की और कहा कि हम सभी को शिक्षा में रचनात्मकता को बढ़ाने के लिए रूचि लेनी चाहिए। अन्त में एन.सी.आर.आई. की श्रीमती भावना जोशी के द्वारा सम्मेलन के संभागियों को धन्यवाद दिया गया और आभार प्रदर्शित किया गया। राष्ट्रगान के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ।

# जरूरी है शिक्षा को भावनाओं से जोड़ना

★ वि.वि. सिंह

पिंजड़े में बंद पक्षी को देखकर मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। मन यह सोचने को बाध्य होता है कि इन्हें उन्मुक्त गगन में उड़ने को छोड़ देना चाहिए। मेरा ऐसा सोचने के पीछे क्या कारण है? विचार करने पर अपने बचपन के गलियारे में पहुंच जाती हूं। घर में बड़े से बग़ीचे में तरह–तरह के पक्षी और तितलियां आया करती थीं। एक से एक आकर्षक, रंग–बिरंगी, कुछ अलग–अलग आकृतियों वाली, पंखों पर बनी तरह–तरह की डिजाइन, जिन्हें हम बाल सुलभ जिज्ञासा और आकर्षण से देखते रह जाते और बार–बार देखने का मन होता। कच्ची उम्र थी। हम भाई–बहनों ने सोचा कुछ बिल्कुल अलग तरह की, बहुत अच्छी वाली तितलियों को पकड़ कर कांच वाली शीशी में रखें तो हम उन्हें निरन्तर देख सकेंगे। कुछ श्रम के पश्चात् 2–3 तितलियां पकड़ कर हमने शीशी में बंद की, फिर अपनी बालबुद्धि लगाई कि इन्हें हवा कैसे मिलेगी। इतनी समझ तो उस समय तक आ चुकी थी कि सांस लेना हर प्राणी के लिए आवश्यक है, सो हमने शीशी का ढक्कन हटा कर एक पतला कपड़ा बांध दिया। फिर हममें से किसी ने सुझाव दिया इस कपड़े में सलाई से कुछ छेद कर दें तो हवा अच्छी तरह व पर्याप्त मात्रा में अंदर जा सकेगी। सो छेद भी कर दिए गए। बिना किसी बड़े की सलाह के यह सब करके हम कांच की शीशी में, उन तितलियों को देखकर बड़े खुश थे। पर अगली सुबह वे तितलियां बेजान हो चुकी थीं और हमारे मन बुझ गए थे। यह था पर्याप्त ज्ञान के अभाव में प्रयोग को अंजाम देने का दुष्परिणाम।

बगीचे में कामिनी फूलों वाला एक झाड़नुमा पेड़ था, जिसकी ऊंचाई अधिक न थी, बड़ी प्यारी खुशबू वाले सफ़ेद फूल उस पर खिलते और जो बात हम बच्चों को उसकी ओर आकर्षित करती, वह थी – उसके अंदरूनी हिस्से में बुलबुल अपना घोंसला बनाती। हम जब बुलबुल को उसके अंदर घुसते हुए देखते तो समझ जाते थे, अब प्रक्रिया शुरू हो गई है। जब बुलबुल उड़ जाती तो हम चुपचाप जाकर झांडियों से झांककर घोंसला देखते फिर अचानक किसी दिन अंडे नज़र आते और हम मन ही मन खुश होते अब इसमें से प्यारे–प्यारे बच्चे निकलेंगे। कभी हमने उन अंड़ों को छूने की कोशिश नहीं की। क्रमशः उनकी बदलती स्थितियों की गवाह हमारी आँखें हैं। जब बुलबुल दाने की तलाश में उड़ जाती तो हम चुपचाप जाकर झांक आते। झाड़ी हटाने से

★ पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

कुछ आवाज़ होती तो वे बच्चे अपने मुंह खोलने लगते और हमें वे बहुत ही प्यारे लगते। कुछ दिनों के अंतराल में देखते, बच्चे उड़ने की कोशिश करने लगे और फिर कुछ दिन गुज़रते–गुज़रते वे कहां उड़ जाते पता नहीं लगता। फिर हमें इन्तजार होता, अगली बार चिड़िया के घोंसला बनाने का और वही सब नज़ारा देखने का।

कुछ बड़े होने पर शायद कक्षा 5 या 6 की पाठ्यपुस्तक में एक कविता पढ़ी थी, जिसमें कवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से यह भाव व्यक्त किए थे कि एक पक्षी को बहुत सुंदर पिंजरे में सोने की कटोरी में खाने को दिया जाए तो वह उसे पसंद नहीं क्योंकि वह तो आकाश में उन्मुक्त उड़ना चाहता है। कवि शिव मंगल सिंह सुमन रचित वे कुछ पंक्तियाँ थीं –

''हम पंछी उन्मुक्त गगन के
पिंजरबद्ध न गा पाएंगे,
कनक–तीलियों से टकरा कर
पुलकित पंख टूट जाएंगे।''

वह कविता दिल को छू गई और तभी से मुझे तोते या अन्य किसी भी पक्षी को पिंजरे में बंद देखकर अच्छा नहीं लगता।

जल में क्रीड़ा करती बतखें, मन को मोह लेती हैं। पानी में काफ़ी देर रहकर किनारे पर बाहर निकलकर जब वे झटककर पानी सुखाती हैं, बड़ा प्यारा लगता है यह दृश्य। हंस, बगुले और सारस भी मन को लुभाते हैं। पानी में तैरती बड़ी छोटी मछलियां किसके मन को नहीं मोहती? ज़रूरत है इन सबसे रूबरू होने की। पशुओं से, पक्षियों से दोस्ती करने व उनकी भावनाओं को समझने की।

तेज़ी से इधर–उधर दौड़ती गिलहरियां, उनकी फुर्ती, उनकी चमकती आँखें और सुंदर सी पूँछ। कभी उन्हें रोटी के छोटे–छोटे टुकड़े डालने पर और फिर दो–चार दिन ऐसा करने पर वे निश्चित समय पर वहाँ दिखाई देती हैं।

सुबह बहुत से लोग कबूतरों को जुआर, बाजरा या मक्की के दानें डालते हैं। ये कबूतर निश्चित समय पर उनकी छत पर नज़र आते हैं। उनके लिए पत्थर या मिट्टी के पात्र में पानी भरकर रखने पर उन्हें पानी पीते और कभी–कभी खेलते देखा जा सकता है।

ये कुछ अनुभव हैं जो हमारे दिल को छूते हैं, प्यार जगाते हैं – प्राणी मात्र के प्रति, नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रति। एक अच्छा इंसान बनने के लिए ये भावनाएं और संवेदनशीलता भी ज़रूरी है।

व्यावहारिक ज्ञान के बिना कोरा ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान जिस तरह से अपूर्ण है भावना रहित ज्ञान भी अधूरा है। ज्ञान बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है, ज्ञानार्जन के साधन बढ़ गए हैं, किन्तु केवल तकनीकी ज्ञान इंसान को नीरस बना देगा। इसलिए भावनाएं आवश्यक है। इंसान का इंसान से रिश्ता, प्राणी मात्र से सम्बन्ध, पशु–पक्षियों के लिए इंसान का कन्सर्न, प्रकृति से सम्पर्क सभी कुछ महत्त्वपूर्ण है, इसलिए इन सबको शिक्षा से जोड़ना ज़रूरी है।

विज्ञान में अवलोकन, प्रयोग और स्वयं करके सीखने का महत्त्व है। बच्चों में अतीव जिज्ञासा होती है, वे बहुत कुछ जानना चाहते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में जानकारी का अत्यधिक विस्तार हुआ है। सब कुछ न तो शिक्षक बता सकते हैं, न पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से वे सब कुछ जान सकते हैं, इसलिए ऐसे प्रयास किए जाएं कि बच्चों की जिज्ञासा बढ़े, ज्ञान प्राप्ति के तरीकों, साधनों से वे अवगत हों। उनकी अवलोकन क्षमता में वृद्धि हो, वे स्वयं करके सीखने की ओर उन्मुख हों। प्रयोग करते समय कुछ सावधानियां अपेक्षित हैं। इस तरह शिक्षक की भूमिका एक उत्प्रेरक, मार्गदर्शक व परामर्शक के रूप में महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान के साथ भावनाएं–संवेदनाएं भी ज़रूरी है। अतः शिक्षा को भावनाओं से जोड़ना आवश्यक है। बिना भावनाओं के शिक्षा ही नहीं जीवन भी अपूर्ण है।

# क्या–क्या गिना! क्या नहीं गिना!!

★ ज्योतिभाई देसाई

**गणित–गणना–गिनना! साधारणतः गिनने से ही किसी बच्चे के जीवन में औपचारिक गणित की शुरूआत होती है। लेकिन ज़्यादातर मसलों में गिनना नीरस और शुष्क होता है और बार–बार दोहराए जाने पर बल दिया जाता है। मूर्त विषय को अमूर्त बना दिया जाता है। 'गिनना' केवल गिनना ही रह जाता है, किन्हीं और अनुभवों के साथ उसका जुड़ाव नहीं किया जाता है। भाषा, काम, विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान से भी जुड़ती है। पढ़ाने के ऐसे ही उपागम को उदाहरणों के साथ प्रस्तुत करता है यह लेख। गिनने की दक्षता को भी रूचिकर ढंग से अन्य विषयों के साथ जोड़कर कैसे विकसित किया जा सकता है? यह बता रहा है प्रस्तुत लेख।**

'मुझे तो यह अपने कमरे की फरशियां,' ब्लैक बोर्ड से लगाकर पीछे की दीवार तक जो लगी हैं वह जानना है। कौन आपस में गिनकर बताना चाहेगा? ऐसा प्रश्न बच्चों के सामने पेश करके मैंने अपनी बातों को प्रारंभ किया।

(पहली बार मैं उस शिक्षा की शाला में फरवरी, 2004 में पहुंचा था। गुजरात के वलसाड जिले का धरमपुर तहसील पूरे देश में सबसे अधिक विस्तार वाला तहसील है। पूरा तहसील जंगल ही है। उसी धरमपुर तहसील के ''खड़की'' गांव में यह शाला है। हमारे वेडछी के गांव में पली हुई सुजाता जी ने उस स्कूल का निर्माण किया है। सुजाता बहन वैसे स्वर्ण पदक धारी एम.एड., एम.एस.सी. है। पांच साल अपनी माता जी के संतोष के वास्ते शहरी स्कूल में उत्तम विज्ञान शिक्षिका के रूप में उभरी थीं पर 'वेडछी आश्रम' की हवा में जिन्होंने प्रारंभिक दस साल की शिक्षा प्राप्त की हो वह तो ऐसा भीतरी स्थल ही चुनेगी ना। गांव का नाम है 'खडकी'। जब सुजाता जी वहां पहले पहल गई थीं तब वहां से 7 कि.मी. तक बना बनाया रास्ता न था। ऐसे जंगल के भीतर गांव में कोई सात साल से यह स्कूल चल रहा था। उस स्थल के स्कूल की यह बात यहां पेश है।)

बच्चों के सामने मैं तो एक अजनबी ही था और मेरा भी ऐसा ही मानना था कि कोई बच्चा झट से उत्तर देने जैसा प्रश्न माने ऐसा मुझे नहीं लगता था।

प्रारंभिक दो–चार मिनट तो पूरे बच्चे मौन बैठे, एक दूसरे को देखते रहे। आखिर एक लड़का खड़ा हो गया। कक्षा में 4 साल की उम्र से लेकर 15 साल के उम्र तक के बच्चे, बच्चियां उपस्थिति थे।

'शाबाश बेटे'! मैंने कहा

'पीछे की दीवार तक जाकर गिनते गिनते यहां तक आओ।' जब वह उन फरशियों को गिनते गिनते चलकर आने लगा तो कुछ दूसरे बच्चे भी उसके साथ गिनने लगे। ''32'' बत्तीस फरशियां हैं'' उन्होंने बताया। अन्य बच्चे जो गिनना जानते थे, वे उनकी बात काटने लगे। ''गलत है ! गलत हैं!!'' '32 फरशियां नहीं हैं', ऐसा कहने लगे।

मैंने कहा 'ठीक है, हम सब साथ मिलकर जांचते हैं। भाई, तेरा नाम क्या है?'

''सुरेश'' उसने उत्तर दिया। मैंने कहा 'अब सुरेश पुनः फरशियां गिनने पीछे की दीवार तक जाओ। हम एक साथ गिनेंगे। हर फरशी पर सुरेश उसका अंक बोलकर खड़ा रहेगा। चलिए सुरेशजी, सभी ठीक गिनना चाहते हैं।'

'अच्छा! अब हम साथ गिनेंगे। सुरेश भाई, हर फरशी गिनी जाय तब तक आप उसी पर ठहरना। हम कहें तब आगे बढ़ना।' मैंने सुझाया।

'एक, सब बच्चे जोर से बोलिये'

''एक'' पूरा परिसर जगा दिया, इतनी जोर से सबने आवाज़ निकाली।

दो, तीन... कर के पूरे बत्तीस हुए। तब सुरेश की विजय हुई। हम सबने, और बच्चों ने तालियां बजाकर उसका स्वागत किया।

'क्या अब हम चौड़ाई में– आमने–सामने की दीवारों के बीच की फरशियां गिने?' मैंने पूछा! अब तो छः सात बच्चे खड़े हो गये।

'धन्य हो!' मैंने कहा, 'यह तो और भी मज़े की बात है। क्या हम इन सातों को गिनने का मौका दे सकते हैं?'

''भाई जी, यह दो लड़कियां पहले दो लाइन की फरशियां गिने। हम दो, दो फरशियां छोड़ के बाकी की फरशियां गिनेंगे। ऐसा करें तो?'' कालू ने निर्णय दिया।

अब गिनना शुरू किया। फल तो यह निकला कि पहली लड़की के गिनने में 26 फरशियां आयी। दूसरी बहन को 28 यह क्या हुआ? ऐसा ही लड़कों में हुआ दो लड़कों को 26 फरशियां आयीं और तीन लड़कों को 28 फरशियां!

'अरे यह क्या? तीन बच्चों को 26 और बाकी चार को 28 फरशियां? यह क्या हुआ? इन दोनों गिनने वालों ने गलती की होगी?' मैंने पूछा 'नहीं, भाई जी, दोनों उत्तर ठीक हैं'' एक दस साल की लड़की बोली।

'वह कैसे?' मैंने पूछा

'देखिये जी, हमारे इस खंड के दो छोर के अंत में खंभा है और बीच में भी दीवार में खंभा है। जहां खंभा है वहां फरशी कम है''

सब बच्चों ने ताली बजाई। सब की बात ठीक निकली। हम सबने मिल के उन्हें बधाई दी।

अब यह गिनने वाली बात बच्चों में जमने लगी।

मैंने पूछा 'अब क्या गिना जाना चाहिए?'

''हम परिसर के सब कमरों की– तीनों कमरे और सुजाता बहन के निवास वाले कमरे की खिड़कियां गिनेंगे।''

'जाओ बारी बारी से खिड़कियां गिनो और लौट के आ जाओ।' मेरे यह कहने तक रूकना इन बच्चों के लिए कठिन था। उत्साह बढ़ रहा था। गिनना तो कमरे के बाहर होने लगा। दौड़ धूप के साथ गिनना शुरू हुआ।

तब जाकर प्रश्न उठा। ''वेन्टीलेटर (रोशनदान) की खिड़कियों का क्या?''

मैंने पूछा रोशनदान की खिड़की दूसरी खिड़की के बराबर है?'

''नहीं जी, दो या तीन को एक करें तो हमारी बड़ी खिड़की के बराबर होगी।''

'तो कैसे करें?' मैंने आगे पूछा।

''हम अलग अलग दोनों गिनेंगे। रोशनदान की अलग और खिड़कियों की अलग।''

गिनाई के बाद ''खंड़ों को मिलाकर 12 खिड़कियां और बहन जी के कमरे की तीन और एक आधी खिड़की भी है। जहां बहनजी सोती हैं।''

'ठीक है और वेन्टीलेटर (रोशनदान)' –''मानो, अगर 3 रोशनदान की एक खिड़की बनती हो तो पूरी खिड़कियां कितनी मानी जाय? मैंने बात आगे बढ़ायी।

अब यह खेल भी हुआ। बातें बनती चलीं। गणित में गिनना क्या मज़े का है। यह बात मानो वहां की हवा में फैल रही थी।

आगे, प्रश्न आया, हम सब बच्चे कितने हैं? लड़कियां कितनी है? लड़के कितने? अगर उसमें भाई जी, और सुजाताजी, दो शिक्षिका बहन जी एवं जशु बहनजी को गिने तो। हमारे यहां और भी तो हैं। दफ्तर के कानजी भाई और रसोई की उपली बहन एवं सुखी बहन सब कितने हुए? इसमें बहनें कितनी? भाई कितने? ऐसा भी गिनना हुआ।

'यह जो नंबर (अंक) आते हैं उसमें क्या छूट जाता है?' मैंने पूछा।

सब बच्चे सोचने लगे। ''सब को तो गिना है। किसी को नहीं छोड़ा है।'', ऐसी भी आवाज़ उठी।

'फिर भी सोचना ज़रूरी है। जब हम कहते हैं कि हम सब मिल के सत्तावन लोग होते हैं तो अभी क्या बात छूटती है?'

''अगर हम यह कह दें कि हम सत्तावन लोगों में 30 बहनें और 27 भाई हैं, तो ठीक हो गया न?'' 'और भी क्या नहीं कहा जाता?' मैं गणित खोल रहा था।

तब सुजाताजी ने नहीं रहा गया। ''आप भी बताइये न।'' नहीं बताऊंगा। सोचना सबको है कि जब

गणित का उपयोग करके केवल संख्या बताते हैं तो सरल हो जाता है' मैंने कहा।

''हां, यह तो हैं कि अगर कोई चीज़ बांटनी हो तो कितनी चाहिए यह तय कर सकते हैं'' किसी लड़की ने कह दिया।

'बिल्कुल ठीक बात बताई तुमने'

''फिर भी और क्या छूटता है? यह प्रश्न हम सब के सामने भाई जी ने रखा है।'' वनीता बहन ने कहा।

'' मैं बताऊं?'' सुरेश बोल पड़ा। 'कहिये' मैंने प्रोत्साहित किया।

''देखिये सब के नाम नहीं लिये जाते। केवल उनकी जाति की संख्या बताई जाती है।''

'धन्य हो, सुरेश जी को तालियों से बधाई देंगे।' गणित भाषा का सहायक बनता है। वस्तु आदि के गुणों को ध्यान में लेकर आसानी का निर्माण करता है। गणित हमारा अच्छा दोस्त है।' मैंने कहा।

'अब आप सब और क्या गिनना चाहेंगे?' मैंने पूछा। रसोई घर के बर्तन गिनेंगे। एक लड़की बोल पड़ी।

मैं कटोरियां गिनूंगी।

मैं चमचे गिनूंगा।

अब थालियां कितनी, बड़े चमचे, छोटे कितने?

गिनो भाई गिनो।

अब गिनने का खेल बच्चों ने अपने आप उठा लिया।

हाथ के नाखून कितने? अपने दो मित्रों के मिल कर कितने? सब बच्चे, बच्चियों के? तब ध्यान में आया इस लड़के की 6 अंगुलियां हैं। पैर में भी, दोनों पैरों में 6, 6 अंगुलियां। बगीचे में पेड़ कितने? हर बच्चा कोई न कोई नई चीज़ गिन कर, खुद से मेरे पास आने लगा बताने के लिए।

भोजन का समय हुआ। तो वहां भी गिनना ही सबका ध्यानमंत्र बना हुआ रहा।

सब्जियां कितनी बार परोसी गई? क्या कुछ बच्चों ने नहीं ली? ज्वार की रोटी कितनी, किसने ली? यह सब गिनते हुए, हंस हंस कर अपना सही/गलत जांच लेना जो चला मानो पूरा परिसर ही गणित के लिये बना हो ऐसा महसूस करने वाला वातावरण हो गया।

भोजन के बाद घूमने, खेलने में भी गिनने की बात चली। कितने झूले खाये?

ऐसा, अब कोई बच्चा नहीं था जो मुझे यह बताने नहीं आया कि उन्होंने क्या विशेष गिन लिया।

बगीचे में फूल की क्यारियों की जो ईंटे लगीं थीं। उन्हें भी गिना गया।

तब एक चार साल की लड़की मेरे पास आयी। मुझे कहने लगी, ''मुझे तो तीन तक ही गिनना आता है। क्या करूं? मुझे भी ईंटे गिननी हैं।''

'यह तो आसान काम है, बेटी, बोलो आपका नाम?

''सुनीता''

'सुनीताजी तीन ईंटे गिनी, तो आगे दूसरी तीन ईंटे गिनो और आगे तीसरी तीन गिनो। हम तीन, तीन का भी गिनना करें तो अपने मन की बात है। जाओ गिन लो तीन ईंटे'

सुनीता की आंखे चमक गयीं। ''मैं तीन में गिनूंगी।''

ऊपर के माहौल पर सुजाताजी और दोनों शिक्षिकायें खुश होकर कहने लगीं, ''यह गिनने के खेल में आपने तो हमारे लिये नयी दिशा खोल दी। हमारा कोई बच्चा ऐसा नहीं रहा जो गिनना छोड़ने के लिए तैयार है। पूछते जाते हैं, अब क्या और गिन सकते हैं। एक बारह साल के लड़के ने तो मुझे यह भी पूछा यह छप्पर खपरैल भी गिन सकते हैं ना?''

आखिर रात्रि प्रार्थना का समय हुआ। वहां भी प्रार्थना के कितने शब्द बोले जाते हैं। यह गिनने

वाले बच्चे भी थे। अब मेरी पहचान ''गिनने, गिनाने वाले गुरूजी''– की हो गयी।

फिर सुजाताजी का आदेश छूटा ''प्रार्थना के बाद हमारे यहां कहानी, बताने की परंपरा है। कोई नयी कहानी बताइये ना।''

'गांधी जी के एक अच्छे साथी थे विनोबा जी। उनकी बताई हुई यह कहानी है।'

दो थे साधक! साधु जो तप करने बैठते हैं उन्हें साधक कहते हैं। दोनों साधकों ने भगवान का दर्शन पाने की इच्छा पूर्ण करने बहुत साधना–तप किया। तब भगवान बहुत खुश हुए और एक के बाद एक के सामने खड़े हुए।

भगवान ने पूछा।

'तुम्हें क्या चाहिए? मैं तेरी प्रार्थना और तप से बहुत खुश हुआ हूं।' जो चाहो सो वरदान देना चाहूंगा।'

''प्रणाम, महादेव जी। मुझे तो यह जीने–मरने का जो चक्र चलता है इससे मुक्ति पानी है। आशीर्वाद दीजिये। बताइये मैं कब मुक्त हो जाऊंगा।''

भगवान ने कहा 'देखो जिस पेड़ के नीचे बैठ के तप करते हो ना, उस पेड़ की जितनी डालियां हैं उतने जन्म लेने होंगे उसके बाद तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।'

वह साधक बिलकुल अवाक रह गया। निराश भी हुआ। क्या इतने बड़े वट–वृक्ष की डालियां– मानों सैंकड़ों? कितने जन्म तप करना होगा? ऐसा सोच के वह सिकुड़ गया, रोने भी लग गया।

तब भगवान दूसरे साधक के सामने खड़े हो गये और वही बात उस साधक ने भी पूछी ''मेरी मुक्ति कब होगी?''

तब भगवान ने कहा ''तुम जिस पेड़ के नीचे तप करते रहे हो, उस पेड़ की जितनी पत्तियां हैं, उतने जन्म तप करोगे तब तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।''

वह साधक, तो भगवान को भूल के पत्तियां गिनने में लग गया।

'क्या कर रहे हो महाराज?' भगवान पूछ बैठे।

''श्रीमान जी, बस इतने ही जन्म लेना बाकी है ना? तो वह पक्का कर लूं कि क्या और कितनी साधना करना बाकी है। मेरी मुक्ति उतनी ही दूर है ना? तो आपने मेरा कल्याण ही करवा दिया।''

'अरे बच्चों! शायद वह साधक हमारी खिड़की की शाला में गिनने की बात समझ चुका था', मैंने कहा।

तब जो तालियां बजीं। हंसी, खुशी! का जो फव्वारा उठा यह गिनने की बात झूम उठी।...

भगवान ने उस साधक पर खुश होकर सारे बाकी के जन्मों की बात छोड़ दी और उन्हें तुरन्त ही मुक्ति प्रदान की।

बच्चों अब मैं तो गीत गाना पसंद करूंगा। आप सब मेरे पीछे दोहराते जायें।

गिनना, गणित का खेल है।
मज़े की रेलम छेल है।।
फरशियां गिनी, खिड़कियां गिनी,
गिने बरतन, गिनी कटोरियां
क्योंकि गिनना हमारा खेल है! गिनना...1
खेल खेल में ईंटें गिनी
बिस्तर गिने, दरियां गिनी
क्योंकि गिनना सच्चा खेल है। गिनना...2
सही गिनेगा, पक्का करेगा
भूल होगी सुधार लेंगे
क्योंकि गिनना सच्चा खेल है। गिनना...3
गिनना हमारा खेल है।...तालियां
पत्ते गिने
तो गणित
पूरा वृक्ष गणित

**विनोबा**

# महात्मा गांधी और शिक्षा

★ आत्म प्रकाश मिश्र

महात्मा गांधी भारतीय गुरूजनों की उस परम्परा में थे, जिन्होंने मनु के शब्दों ''स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः'' पर आचरण किया। वह कृष्ण, बुद्ध तथा ईसा के पदचिन्हों पर चले और उन्होंने उपदेश से अधिक अपने उदाहरण द्वारा शिक्षा दी। अर्द्ध शताब्दी पर्यन्त वे एक बड़े महाद्वीप की जनता को आत्मसंयम एवं स्वशासन करने की शिक्षा देते रहे। वे शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन का अंग मानते थे। और उसकी प्रत्येक बात को शाश्वत मूल्यों से जोड़ते थे। शिक्षा द्वारा वे सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन की कल्पना संजोये हुए थे।

**गांधीजी की शिक्षा योजना देश–काल के अनुरूप थी और उसमें उच्च कोटि के शिक्षात्मक तत्वों का समावेश था। यह संभव इसलिए बना कि उनके शिक्षा–विचारों का आधार परिस्थितियों की वास्तविकता, मूल्यों की शाश्वतता और जीवन से सम्बद्धता थी।**

गांधीजी की शिक्षा योजना देश–काल के अनुरूप थी और उसमें उच्च कोटि के शिक्षात्मक तत्वों का समावेश था। यह संभव इसलिए बना कि उनके शिक्षा–विचारों का आधार परिस्थितियों की वास्तविकता, मूल्यों की शाश्वतता और जीवन से सम्बद्धता थी। उनके विचारों को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख तत्व थे। एक था, उनका आधुनिक शिक्षा प्रणाली का कटु अनुभव, जिसने उनके मन में बचपन से ही धारणायें बनाना आरम्भ कर दिया था। दूसरा, उनके शिक्षा संबंधी प्रयोग, जिन्होंने उनके शिक्षा विचारों को दिशा दी। और तीसरे, उनका भारतीय समाज का अंतरंग ज्ञान, जिसने उनकी शिक्षा योजना को सामाजिक उपादेयता की कसौटी पर कसा।

दो या तीन भाषायें पढ़ाने के संबंध में वर्तमान में जो विवाद उठ खड़ा हुआ है, उसके संदर्भ में गांधी जी का विचार उल्लेखनीय है– ''आज मैं यह मानता हूं कि भारतवर्ष में उच्च शिक्षण क्रम में अपनी मातृभाषा के सिवा राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और अंग्रेजी को स्थान मिलना चाहिए। भाषाओं की इतनी लम्बी सूची से किसी को डरना नहीं चाहिए। यदि भाषायें ढंग से सिखाई जाएं और सब विषय अंग्रेज़ी द्वारा ही पढ़ने–समझने का बोझ हम पर न हो तो उपर्युक्त भाषाओं की शिक्षा भारस्वरूप नहीं होगी। बल्कि उसमें बहुत रस मिलेगा। उसके अतिरिक्त एक भाषा शास्त्रीय पद्धति से सीख लेने वाले के लिए दूसरी भाषा का

ज्ञान सुलभ हो जाता है। सच पूछिये तो हिन्दी, गुजराती और संस्कृत की एक भाषा में गणना की जा सकती है। उसी प्रकार फ़ारसी और अरबी को एक माना जा सकता है। उर्दू को मैं अलग भाषा नहीं मानता, क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिन्दी में जो जाता है। उसके शब्द तो फ़ारसी और अरबी के ही हैं। अच्छी उर्दू जानने वाले के लिए अरबी और फारसी जानना ज़रूरी है, वैसे ही जैसे अच्छी गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी जानने वाले के लिए संस्कृत जानना।'' यह अनुभवजन्य व्यक्तव्य एक ऐसे व्यक्ति का है, जिसने स्वयं कई भाषाओं का सफ़ल अध्ययन किया था।

धार्मिक शिक्षा के संबंध में भी बड़ा मतान्तर व्यक्त किया जाता है। इस संबंध में गांधीजी की धारणा बहुत पहिले ही पुष्ट हो चुकी थी। वे कहते हैं ''छठे सातवें से शुरू करके सोलह वर्ष का होने तक पढ़ता रहा। पाठशाला में सब तरह की बातें सीखी पर कहीं भी धर्म शिक्षा न मिली। कहना चाहिए कि जो वस्तु शिक्षकों से अनायास ही मिलनी चाहिए थी वह न मिली।'' किन्तु घर और समाज से उनके जो संस्कार बने उनसे ''एक बात ने मेरे मन में जड़ जमा ली– यह संसार नीति पर टिका हुआ है, और सारी नैतिकता का तत्व पदार्थ सत्य है। अतएव सत्य प्राप्ति मेरा प्रमुख उद्देश्य बन गया। दिन प्रतिदिन सत्य की महत्ता मेरी दृष्टि से बढ़ती गई, विस्तार पाती गई।'' गांधीजी धर्म को बड़े व्यापक रूप से लेते थे उसे किसी सम्प्रदाय विशेष के धर्म तक सीमित नहीं समझते थे। इस व्यापक अर्थ में वे धर्म को आत्मबोध एवं आत्मज्ञान मानते थे।

## शिक्षा विचारों का विकास

महात्मा गांधी का शिक्षा–दर्शन चालीस वर्ष के व्यक्तिगत अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर बना है। इनकी पृष्ठभूमि थी स्वदेश तथा दक्षिण अफ्रीका के स्वदेशवासियों का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन। गांधीजी के इन अनुभवों और प्रयोगों में यथार्थता, सूक्ष्म विवरण, तथा दूरदर्शिता का गुण रहा है। उन्होंने एक वैज्ञानिक की भांति निष्कर्षों को खुले दिमाग़ से स्वीकार और अस्वीकार किया है। उन्होंने इनके सत्य की खोज की है, गहरा अन्तरदर्शन किया है और सच्चे मनोवैज्ञानिक की भांति बाल प्रकृति की कसौटी पर कसा है। जो उन्हें तर्क और हृदय से ठीक जान पड़े, उन पर पुनः प्रयोग किया गया है और फिर जिन निष्कर्षों की सत्यता शाश्वत जान पड़ी है, उन्हीं को अपनाया है। यद्यपि गांधीजी आदर्शवादी थे, किन्तु बड़े क्रियात्मक भी। अतएव अपने सिद्धान्तों को कर्म की शिला पर ठोक पीटकर संवारते थे। इससे उनके विचार आत्मनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होते थे, परिकल्पित न होकर प्रयोगात्मक होते थे। वे प्रयोगों द्वारा व्यवहृत और क्रियान्विति द्वारा परीक्षित होते थे। छोटे स्तर पर किए गये ये प्रयोग आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों का मार्ग दर्शन करेंगे कि शिक्षा जगत में उपयोगी शोध कैसे की जा सकती है।

गांधीजी के शिक्षा विचारों का सूत्रपात तत्कालीन शिक्षा के दोषों से हुआ। उस समय की शिक्षा बालक के प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश की अवहेलना करके निरी साहित्यिक (लिटरेरी) होती थी, जिसमें हृदय के संस्कार (कल्चर) की कोई गुंजाइश नहीं थी। यह भारतीय प्रतिभा के प्रतिकूल बड़ी अपव्ययी तथा निष्प्रभावी थी और सार्वजनिक शिक्षा देने में सर्वथा असमर्थ थी। इस दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली को हटाना तो सरल था, किन्तु इसके स्थान पर उचित प्रणाली निर्धारित करना कठिन कार्य था।

उपयुक्त शिक्षा प्रणाली के निर्माण के लिए गांधीजी स्वयम् शिक्षक बने और शिक्षा प्रयोगों का श्रीगणेश

अपने घर से किया। अपने बच्चों, अशिक्षित पत्नी तथा नौकरों को पढ़ाना शुरू किया। इनसे प्राप्त निष्कर्षों की पुष्टि के लिए उन्होंने इन्हें बड़े पैमाने पर फीनिक्स तथा टालस्टाय–फार्म पर चलाया। दूसरे चरण में यह प्रयोग साबरमती आश्रम और चंपारण में किए गए, जिसमें वयस्क शिक्षा पर भी बल था। तीसरे चरण में गांधीजी ने सन् 1939 में अपने शिक्षा सिद्धान्तों को शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख रखा और नई तालीम, अथवा वर्धा योजना को जन्म दिया।

अपने शिक्षा–दर्शन के विकास में गांधीजी को तीन व्यक्तियों के विचारों ने बहुत प्रभावित किया। एक थे, रायचंद भाई जो दक्षिण अफ्रीका में एक व्यापारी थे, किन्तु थे बड़े शतावधानी, गम्भीर शास्त्रज्ञ, उच्च चरित्रवान तथा उत्कृष्ट आत्मदर्शी। अपने आध्यात्मिक संकट में गांधीजी उनका आश्रय लिया करते थे। दूसरे थे टॉलस्टाय, जिनकी पुस्तक ''द किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदिन यू'' (बैकुण्ड तेरे हृदय में है) के प्रेम संदश ने ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना जागृत की, और यह विचार दिया कि बिना हाथ –पैर चलाये शिक्षा मस्तिष्क का क्षय कर देती है। तीसरे व्यक्ति थे रस्किन, जिनकी पुस्तक ''अनटू दिस लास्ट'' ने गांधीजी के मन में सुप्त विचारों को स्पष्ट प्रतिबिम्बित किया और उनके जीवन में तत्काल महत्व का रचनात्मक परिवर्तन किया। उससे उन्हें सर्वोदय के तीन सिद्धान्त मिले। पहिला सबके भले में अपना भला समाया हुआ है, दूसरा सबके काम का मूल्य एकसा होना चाहिए और तीसरे सादा, मेहनत–मशक्कतवाला किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। इन महान् व्यक्तियों के विचारों में अपनी धारणाओं की पुष्टि पाकर गांधीजी ने अपने शिक्षा–दर्शन को परिपक्व किया और इसे एक संगठित रूप से प्रस्तुत करने का साहस किया।

गांधीजी ने अपने शिक्षा–दर्शन को तत्कालीन भारतीय समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में जमाया। अंग्रेजी शिक्षा प्रायः बौद्धिक थी, जिसने शिक्षित एवं श्रमिक के बीच भारी खाई पैदा कर दी। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी जीविकोपार्जन दुर्लभ था। बुद्धिजीवी गरीब श्रमजीवियों का लाभ उठाकर शोषण कर अपने व्यक्तिक उन्नयन में लगे हुए थे। विदेश में निर्मित सामग्री से देश इतना आक्रान्त था कि गांवों में भी बेकारी और गरीबी बढ़ी हुई थी और ग्रामीण जीवन पूरा अस्त–व्यस्त हो गया था। अतएव गांवों के आर्थिक जीवन को सुधारने का एक ही तरीका गांधीजी को समझ में आया कि शिक्षा का उससे निकट संबंध स्थापित किया जावे। उन्होंने किसी लघु ग्रामीण उत्पादन को आर्थिक जीवन का आधार बनाने की सोची। इससे व्यक्ति की शक्तियों को विकास करने का अवसर मिलेगा और प्राप्य सामग्री का उपयोग स्वातंत्र्य प्रेम और अहिंसात्मक भावना से संबंधित होगा। अतएव उन्होंने शिक्षा को किसी मूलोद्योग पर आधारित करने का निश्चय किया। इस मूलोद्योग से न केवल हाथ का प्रशिक्षण होगा वरन् मानस और हृदय का भी प्रशिक्षण होता चलेगा। यह केवल श्रम के सम्मान को प्रतिष्ठित न करेगा

**उपयुक्त शिक्षा प्रणाली के निर्माण के लिए गांधीजी स्वयम् शिक्षक बने और शिक्षा प्रयोगों का श्रीगणेश अपने घर से किया। अपने बच्चों, अशिक्षित पत्नी तथा नौकरों को पढ़ाना शुरू किया। इनसे प्राप्त निष्कर्षों की पुष्टि के लिए उन्होंने इन्हें बड़े पैमाने पर फीनिक्स तथा टालस्टाय–फार्म पर चलाया।**

वरन् ईमानदारी से जीवकोपार्जन करने का साधन भी जुटायेगा। अर्थाभाव से शिक्षा को सार्वजनिक बनाने में जो कठिनाई थी, उसका भी किसी सीमा तक इससे निराकरण हो सकेगा।

## बुनियादी शिक्षा योजना

अपने चालीस वर्ष के शिक्षा अनुभवों तथा प्रयोगात्मक निष्कर्षों को गांधीजी ने देश–काल की पृष्ठभूमि में रखकर अक्टूबर 1937 में वर्धा सम्मेलन में शिक्षाविदों के सम्मुख रखा, जो बाद में वर्धा योजना के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसे प्रायः बुनियादी शिक्षा अथवा बेसिक शिक्षा भी कहते हैं, क्योंकि इस योजना में आधारभूत, बुनियादी एवं न्यूनतम किन्तु अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है, और इस शिक्षा का आधार एक बेसिक क्राफ्ट, एक मूलोद्योग रखा गया है। इस शिक्षा का उद्देश्य हाथ और ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा से प्रारम्भ कर मस्तिष्क तथा हृदय का उन्नयन करना तथा छात्र को शाला से समाज तथा ईश्वर की ओर अग्रसर करना है। बेसिक शिक्षा योजना के पांच मूल सिद्धान्त हैं:

(1) सात से चौदह वर्ष तक के बालक और बालिकाओं को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जावे। निशुल्क होने से सभी अमीर–गरीब समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और अनिवार्य बनाकर सार्वभौमिक रूप से न्यूनतम आधारभूत (फण्डामेण्टल) शिक्षा सभी को देने की व्यवस्था की गई है।

(2) शिक्षा किसी हस्तकौशल या उत्पादन कार्य के माध्यम से दी जावे, जो पाठशाला में दी जाने वाली सम्पूर्ण शिक्षा का केन्द्र बिन्दु माना जाएगा। हस्तकौशल से तात्पर्य हाथ से किये जाने वाले ऐसे कौशलपूर्ण कार्य से है जो लाभप्रद और सुन्दर हो। वह बौद्धिक शिक्षा का एक साधन मात्र न होगा, बल्कि वह तो साधन और साध्य दोनों ही होगा। हस्तकौशल को शिक्षा का माध्यम बनाने के फलस्वरूप शैक्षिक दृष्टि से ज्ञान अधिक ठोस एवं यथार्थ होगा तथा जीवन से सम्बद्ध होकर शिक्षण के समन्वय सिद्धान्त को अधिक व्यावहारिक बनायेगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह छात्रों की विशुद्ध बौद्धिक एवं सैद्धान्तिक शिक्षण की निरंकुशता से सुरक्षा करेगा, जिसके प्रतिकूल उनका क्रियाशील स्वभाव सदा स्वस्थ विरोध व्यक्त किया करता है। सामाजिक दृष्टि से हस्त का माध्यम श्रम एवं बुद्धिजीवियों के बीच के वर्तमान पूर्वाग्रहों की खाई को पाट देगा, जो दोनों के ही लिये सर्वथा हानिप्रद है। यदि यह समझदारी और निपुणता से किया गया तो आर्थिक पार्श्व में इससे कामगारों की उत्पादन क्षमता बढ़ेगी और वे अपने अवकाश का समुचित उपयोग कर सकेंगे।

(3) तीसरा सिद्धान्त स्वालम्बन का है। उसके अनुसार शिक्षा अपने को चलाने का बहुत कुछ खर्च हस्तकौशल द्वारा बनाये सामान को बेचकर स्वयं ही निकाल ले। छात्रों द्वारा बने सामान से कम से कम शिक्षक का वेतन निकल आयेगा। इस आर्थिक पक्ष के आ जाने से बालकों का काम खेल–तमाशा न होकर वास्तविक उत्पादन कार्य होगा और सीखने–सिखाने के कार्य को आंकने का एक बाहरी मापदण्ड भी रहेगा। यह सिद्धान्त शिक्षा को वास्तविक जीवन से सम्बद्ध करता है। समाज के कार्यों में योगदान और क्रय–विक्रय तथा उत्पादन खपत की प्रक्रियाओं का यह ज्ञान कराता है। इसका दूसरा मन्तव्य जीवकोपार्जन की समस्या को हल करना है।

बेरोजगारी के चक्कर में आने की अपेक्षा छात्र शाला के सीखे उद्योग–धंधे से अपनी रोटी कमा सकते हैं।

इस सिद्धान्त को गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की कसौटी कहा था। किन्तु वे हठपूर्वक इसे बाध्य करने के पक्ष में न थे। उन्होंने कहा है, ''शिक्षा की सफलता की जांच स्वावलम्बन से न होगी, वरन् इस बात से होगी कि वैज्ञानिक विधि से हस्तकौशल सीखने में छात्र की सम्पूर्ण योग्यताएं विकसित हुई हैं अथवा नहीं।''

(4) शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाय। इस सिद्धान्त को अपनाकर शिक्षण के स्वाभाविक मार्ग को स्वीकार किया गया है, और विदेशी भाषा के माध्यम से जो शक्ति क्षय, अपव्यय और हानियां होती हैं उन्हें दूर किया गया है। इस संबंध में महात्मा गांधी के विचारों को डॉ. जाकिर हुसैन ने अपनी रिपोर्ट में इस प्रकार व्यक्त किया है ''सब तरह की बुनियाद मातृभाषा की माकूल शिक्षा है। जब तक आदमी पुरअसर ढंग से बातचीत करना और सही–सही और साफ़–साफ़ लिखना–पढ़ना नहीं जानता, उसमें ख्यालों की सेहत और सफ़ाई नहीं आती। इसके लिए भाषा वह ज़रिया है जिसके ज़रिये बच्चों को अपने देश के विचारों, भावनाओं और हौसलों की बहुत बड़ी विरासत हासिल होती है। दूसरे, भाषा वह कुदरती ज़रिया है, जिसके द्वारा बच्चा सुन्दर चीज़ों को सराहने के भावों को ज़ाहिर करता है। और भाषा तथा उसका अदब साहित्य आनन्द का साधन बन जाता है।

(5) बेसिक शिक्षा योजना का आदर्श ऐसे नागरिक निर्माण करना है, जो देश में उत्पादन कार्य करने वाले हों, प्रत्येक लाभदायक कार्य को आदर दें, इज्जत के काबिल समझें, और स्वयम् अपने पैरों पर खड़े हो सकें। शिक्षा भावी नागरिकों में वैयक्तिक महत्ता, गरिमा एवं दक्षता की भावना जागृत करे, जिससे उनमें अपने को स्वतः सुधारने की इच्छा उत्पन्न हो और मिलजुलकर काम करके समाज सेवा करना आवे। वे अपनी समस्याओं को समझ सकें, अपने अधिकारों और कर्तव्यों को भली–भांति जान लें। वे अपने शिक्षाकाल में ऐसा सहकारितापूर्ण जीवन–यापन करें, जिसके समस्त कार्यों में समाज सेवा भावना सर्वोपरि हो, जिससे वे ऐसा अनुभव कर सकें कि राष्ट्रीय शिक्षा के पुनर्निर्माण में वह सीधे व्यक्तिगत रूप से भाग ले रहे हैं।

इन सिद्धान्तों के अनुकूल शिक्षा संगठन और पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त हुई, जिसकी रिपोर्ट बेसिक नेशनल एजूकेशन के नाम से प्रकाशित हुई। सन् 1938 में जब प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें बनी तो इस योजना में कुछ संशोधन किए गए विशेषकर समवाय और स्वावलंबन के सिद्धान्तों में। अध्यापन में उत्तम समवाय स्थापित करने की कठिनाइयों को देखते हुए दो और समवाय केन्द्र स्वीकार किए गए–एक प्रकृति, और दूसरा समाज। शैक्षिक सामग्री अब प्रकृति, उद्योग और समाज में से किसी एक केन्द्र से समवायित की जा सकती थी। स्वावंलबन सिद्धान्त में शिक्षक वेतन के माप दण्ड को घटाकर प्रयुक्त सामग्री की लागत मात्र प्राप्त कर लेना मान लिया गया।

किन्तु गांधी जी बराबर अपनी शिक्षा योजना पर चिन्तन करते रहे। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद जब वे जेल से निकले तो उन्होंने नई तालीम पर परिवर्द्धित विचार व्यक्त किए, जिनके आधार पर

सन् 1945 में सेवाग्राम के शिक्षा सम्मेलन द्वारा समग्र शिक्षा की योजना प्रस्तुत की गई। नई तालीम से उनका अभिप्राय था जीवन की शिक्षा से, जिसका क्षेत्र गर्भ में आने के क्षण से कब्र में जाने तक का है। शिक्षा जीवन के समग्र क्षेत्र का स्पर्श करती है। जीवन की कोई छोटी से छोटी बात भी ऐसी नहीं है, जिनका शिक्षा से संबंध न हो। स्वच्छता तथा स्वास्थ्य, नागरिकता, कार्य और आराधना, खेल और मनोरंजन, यह सब पाठ्यक्रम से विलग विषय नहीं है, वरन् समरस एवं संतुलित जीवन विकास की अंतर्सम्बन्धित प्रक्रियायें हैं। शिक्षा की ऐसी कल्पना जीवन के साथ व्यापक हो जाती है।' ऐसी शिक्षा से गांधीजी का अंतिम लक्ष्य एक संतुलित संतुष्ट समाज की स्थापना थी, जिसमें साधारण व्यक्ति अपनी अंतर्निहित शक्तियों को विकसित कर शांतिमय, संतुष्ट एवं प्रसन्न जीवन व्यतीत करे। भारतीय जनता के उद्धार का साधन ऐसी शिक्षा ही बन सकती थी।

**नई तालीम से उनका अभिप्राय था जीवन की शिक्षा से, जिसका क्षेत्र गर्भ में आने के क्षण से कब्र में जाने तक का है। शिक्षा जीवन के समग्र क्षेत्र का स्पर्श करती है। जीवन की कोई छोटी से छोटी बात भी ऐसी नहीं है, जिनका शिक्षा से संबंध न हो।**

नई तालीम की चार अवस्थायें की गई। पहिली अवस्था में सम्पूर्ण समुदाय की शिक्षा का कार्यक्रम था, जिससे उसका प्रत्येक सदस्य प्रसन्न, स्वस्थ, स्वच्छ एवं आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत कर सके। दूसरी अवस्था, में सात वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की पूर्व बेसिक (प्री–बेसिक) शिक्षा आती है, जिसमें शिक्षक तथा अभिभावक और घर तथा समाज को शिशुओं की शक्तियों को विकसित कराने में हाथ बटाना पड़ेगा। तीसरी अवस्था, बेसिक शिक्षा की सात से पन्द्रह वर्ष आयु पर्यन्त कार्यक्रम की है, जो वर्धा योजना के अन्तर्गत आ गई है। चौथी अवस्था उत्तर–बेसिक (पोस्ट–बेसिक) की है, जो बेसिक शिक्षा पूर्ण होने पर आरम्भ होगी और जिसमें किशोरों की पंद्रह से अठारह वर्ष तक की ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जावेगी कि वे वयस्क जीवन के कौटुम्बिक भार को वहन करने योग्य बन सकें। इसमें 'शाला ग्राम' में रहकर विभिन्न प्रकार की उत्पादन क्रियाओं को सीखने का अवसर मिलेगा, जिनसे व्यवस्थित ज्ञान की प्राप्ति तो होगी ही, समाज का संपालन भी होगा। जिनकी योग्यता एवं रूचि प्रखर हुई, वे विश्वविद्यालयों में उच्च व्यावसायिक प्रशिक्षण भी प्राप्त कर सकेंगे।

बेसिक शिक्षा में गत्यात्मकता है, जिसका परम्परावादी शिक्षा में सर्वथा अभाव है। इसकी लघु उद्योगों द्वारा उत्पादन की विकेन्द्रित विधि समाजवादी अर्थव्यवस्था के मूल में है। प्रत्येक स्थान के उपयुक्त उद्योग चयन करने में सावधानी परम आवश्यक है। जो उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होंगे, वे नागरिक क्षेत्रों के लिए नहीं। आवश्यकतानुसार शहरी क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान से संबद्ध उद्योग चलाने पर ध्यान देना चाहिए था। किन्तु ग्रामीण उद्योगों पर ही बल होने के कारण लोगों ने शिक्षा–योजना को ग्रामीण क्षेत्रों के उपयुक्त ठहराया। स्वावलंबन सिद्धान्त पर अधिक जोर न

देने के कारण बेसिक पाठशालाओं का व्यय परम्परागत शालाओं की अपेक्षा कहीं अधिक हो गया। इन कारणों से नई तालीम और पुरानी शिक्षा में भेद बढ़ता गया और बेसिक शिक्षा वांछित प्रगति न कर सकी।

स्वतंत्रता प्राप्त होने पर भारत सरकार ने बेसिक शिक्षा–प्रणाली को स्वीकार कर समस्त देश में चलाया, किन्तु अधिकारियों और कर्मचारियों की बेसिक शिक्षा में संदिग्ध आस्था तथा उदासीनता, उपयुक्त प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, और कुछ कथित विशेषज्ञों का महात्मा जी के नैकट्य की दुहाई देकर इसकी ऊटपटांग व्याख्या करना इसकी मंद प्रगति के कारण बताये जाते हैं। ''थोड़ी कही कबीर, बहुत कही संतन'' की लोकोक्ति बेसिक शिक्षा के संबंध में चरितार्थ होती है। इसकी ऐसी दशा देखकर उसके एक प्रवर्तक ने कहा, ''बुनियादी तालीम जैसी कुछ वह आज चल रही है, एक धोखा मात्र है।'' केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने धीमी आवाज़ में उसकी असफलता की ओर संकेत किया। शासन के अन्य अधिकारी प्रवक्ताओं ने इस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता निरूपित की। सब मिलाकर आज बेसिक शिक्षा एक गुड़ भरा हंसिया बन गई है, जो न निगला जा सकता है, न उगला जा सकता है। यदि महात्मा गांधी आज जीवित होते तो वे अवश्य इस संबंध में कोई क्रान्तिकारी घोषणा करते, जैसी उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर कांग्रेस संस्था के संबंध में की थी।

## गांधीजी के शिक्षा संबंधी अन्य विचार

स्वस्थ शैक्षिक सिद्धान्तों पर भारतीय–जनमानस के उपयुक्त शिक्षा योजना प्रस्तुत करने के अतिरिक्त गांधीजी शिक्षा की प्रायः सभी महत्वपूर्ण समस्याओं पर अपने विचार समय–समय पर व्यक्त करते रहे हैं। उनमें से कुछ प्रमुख विचारों की चर्चा करना यहां हमारा अभीष्ट होगा।

## शिक्षा का माध्यम और अंग्रेजी :

पहली समस्या जिस पर आज बड़ा विवाद फैला है, अंग्रेजी पढ़ने की है। इस पर गांधीजी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था, ''अंग्रेजी भाषा को उसके अपने स्थान में रखना मुझे प्रिय है, किन्तु यदि वह ऐसा स्थान हड़प लेती है जो उसका नहीं हैं, तो मैं उसका कट्टर विरोधी हूं। मैं उसे दूसरी वैकल्पिक भाषा का स्थान दे सकता हूं, वह भी स्कूल की पढ़ाई में नहीं विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में। यह हमारी मानसिक दासता है कि हम समझते हैं कि अंग्रेजी बिना हमारा काम नहीं चल सकता।'' अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, कूटनीति की भाषा है, उसमें अनेक बढ़िया साहित्यरत्न भरे हैं, और उसके द्वारा हमें पाश्चात्य विचार और संस्कृति का परिचय होता है। इसलिए हममें से कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी जानना जरूरी है। वे राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के विभाग चला सकते हैं और राष्ट्र को पश्चिम का उत्तम साहित्य, विचार और विज्ञान दे सकते हैं यह अंग्रेजी का उचित उपयोग होता है।'' इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा ''भारत को अपनी जलवायु, अपने ही प्राकृतिक सौन्दर्य और अपने ही साहित्य में फलना–फूलना होगा, फिर चाहे इंगलैण्ड के मुकाबले में कितना भी घटिया क्यों न हो''

गांधीजी मातृभाषा को शिक्षा–माध्यम बनाने पर बड़ा ज़ोर देते थे, और अंग्रेजी माध्यम से होने वाले आपराधिक अपव्यय को समाप्त करने के लिए अविलम्ब माध्यम परिवर्तन कराना चाहते थे, चाहे उससे उच्च शिक्षा में किंचित काल तक अस्तव्यस्ता ही क्यों न हो जाये। उनका विश्वास था कि ऐसा करने से पाठ्यपुस्तकों का अभाव तुरन्त दूर होगा, जिसकी दुहाई देकर लोग माध्यम नहीं बदलने देते।

## राष्ट्र–भाषा :

राष्ट्र भाषा के निर्णयार्थ गांधीजी ने पांच निष्कर्ष बनाए थे और उन पर हिन्दी को पूरा उतरता पाया। जो लोग हिन्दी के राष्ट्र भाषा होने से अन्य प्रान्तीय भाषाओं को धक्का लगने की बात करते थे, उनका भय वे अज्ञानता से उत्पन्न मानते थे। वे राष्ट्र भाषा हिन्दी के भवन की आधार शिला प्रान्तीय भाषाएं बताते थे और एक भाषा को दूसरे की पूरक कहते थे। लिपि के संबंध में उनका कहना था कि –''यदि मेरी चले तो मैं देवनागरी और उर्दू लिपि का सीखना अनिवार्य कर दूं। रोमन लिपि उन्हें अस्वीकार थी।

उनका मत था कि प्रत्येक सुसंस्कृत भारतीय को अपनी प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त यदि वह हिन्दू है तो संस्कृत जानना चाहिए, यदि मुसलमान है तो अरबी, यदि पारसी है तो फारसी और इन सबको हिन्दी जानना चाहिए। उनका अनुभव था कि एक भाषा को अच्छी तरह सीख लेने पर अन्य भाषायें सीखना कठिन न होगा। अतएव वे उच्च शिक्षा में प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और अंग्रेजी पढ़ाने की व्यवस्था चाहते थे।

## धर्म–शिक्षा

गांधीजी का कहना था कि ''मेरे लिए धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा है या यों कहिए केवल सत्य है, क्योंकि अहिंसा सत्य की खोज के लिए आवश्यक एवं एक अनिवार्य साधन होने के कारण वह सत्य में समाई हुई है। धर्म की शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपने धर्म को छोड़कर अन्य सभी धर्मों के सिद्धान्त होने चाहिएं, जिन्हें विद्यार्थी श्रद्धा भावना और उदार सहिष्णुता से समझें और सराहें। उन्हें किसी विरोधी अलोचक के भाषान्तर से न पढ़ा जाय, वरन् किसी भक्त की रचना के अध्ययन द्वारा समझा जावे।'' गांधीजी नीति को धर्म की सार वस्तु मानते थे और उसी की शिक्षा पर बल देते थे। सब धर्मों के इन समान तत्वों की शिक्षा वे शिक्षक के दैनिक जीवन एवं आचरण से प्राप्त करना चाहते थे। भारतवर्ष में अनेक धर्म और अनेक सम्प्रदाय होने के कारण एकता के बजाए झगड़ा खड़ा होने का डर था। अतएव उन्होंने अपनी वर्धा शिक्षा योजना में धर्म शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं रखी थी, 'कौन कहता है कि इस शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव है। मैंने इस योजना के द्वारा स्वावलम्बन के महान धर्म को पढ़ाने का प्रबंध किया है।'

**गांधीजी का कहना था कि ''मेरे लिए धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा है या यों कहिए केवल सत्य है, क्योंकि अहिंसा सत्य की खोज के लिए आवश्यक एवं एक अनिवार्य साधन होने के कारण वह सत्य में समाई हुई है।''**

## स्त्री शिक्षा :

स्त्रियों के लिए महात्मा गांधी के मन में बड़ा आदर था और वे उनकी शिक्षा के हामी थे। उनका मत था कि स्त्रियों का प्रमुख कार्य क्षेत्र घर का जीवन होता है, अतएव उन्हें एक सफल गृहिणी और संतति के पोषण एवं प्रशिक्षण की पूरी शिक्षा दी जानी चाहिए। आरम्भ में उनके और बालकों के विषय उभयनिष्ठ हो सकते हैं किन्तु आगे चलकर स्त्रियों के उपुयक्त विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। सह–शिक्षा के प्रश्न पर वे उदार दृष्टि रखते थे और आठ वर्ष तक उसे उचित मानते थे, उसके उपरांत यदि

बालक और बलिकाएं चाहें तो सोलह वर्ष तक साथ–साथ पढ़ सकते हैं। वे इस की कठिनाइयों से अवगत थे कि बालिकाओं को आत्म–सुरक्षा का प्रशिक्षण अनिवार्य चाहते थे कि बालिकाओं को आत्म–सुरक्षा का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से दिया जाय, जिससे वे दुष्टों की छेड़–छाड़ से अपनी रक्षा कर सकें तथा दहेज के भूखे नव–युवकों को अच्छा सबक सिखा सकें। छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए वे पुरूषों की अपेक्षा माताओं को अधिक उपुयक्त समझते थे।

## सेक्स शिक्षा :

सेक्स शिक्षा पर गांधीजी के विचार आधुनिकतम थे। वे किशारों को प्रजनन अंगों तक का ज्ञान कराने के पक्ष में थे, किन्तु वे इस शिक्षा का उद्देश्य सेक्स भावना का शोधन, उसका पूर्ण नियंत्रण तथा उस पर विजय प्राप्त करना मानते थे। इस विषय के अध्यापन के लिए ऐसे ही शिक्षकों को उपयुक्त समझते थे, जिन्होनें आत्म संयम और अपने भावावेगों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया हो।

## शारीरिक शिक्षा :

वह शरीर को स्वस्थ रखना परम आवश्यक समझते थे और उनका यह विश्वास था कि उद्योग करने में बालकों को पर्याप्त शारीरिक परिश्रम करने का अवसर मिलेगा। वे अर्थ–साध्य खेलों के पक्ष में न थे, वरन् भारतीय खेलों को जो बिना खर्च के खेले जा सकते हैं उचित समझते थे। वे स्त्रियों के लिए टहलने जाना और वाहन प्रयोग की अपेक्षा पैदल चलना लाभप्रद मानते थे। इसमें वे सरलता और आत्मनिर्भरता पर विशेष बल देते थे।

## वयस्क शिक्षा :

वयस्कों की निरक्षरता दूर करने पर गांधीजी इतना बल नहीं देते थे, जितना उसकी अज्ञानता दूर करने पर। अतएव ग्रामीणों के मस्तिष्क को शिक्षित करने के लिए वे ऐसी शिक्षा की व्यवस्था चाहते थे, जो

उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा स्वास्थ्य संबंधी जीवन से सम्बद्ध हो। वह उन्हें बुरे आचार–व्यवहार जैसे बाल विवाह, मद्यपान, छुआछूत, अंधविश्वास आदि को त्यागने की प्रेरणा दे। वह

उनके दैनिक कार्य–कलापों को आधार मानकर दी जावे, जिससे उनके मन में और अधिक ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा बढ़े और साक्षरता को स्थायी बना सके। उनकी दो प्रमुख समस्यायें भोजन और कपड़े की होती है। उनके हल के लिए गांधी जी बेसिक शिक्षा की भांति किसी जीवन संबंधी उद्योग द्वारा उन्हें शिक्षा देने के पक्ष में थे। इस शिक्षा से वे उनमें परिवर्तन और सुधार की भावना उत्पन्न करना चाहते थे, जिससे वे स्वस्थ नैतिक जीवन सहकारिता पूर्वक व्यतीत कर सकें।

## उच्च शिक्षा

गांधीजी शिक्षा का भार शासन पर न डालना चाहते थे वरन् उसे जनता तथा निजी संस्थाओं का उत्तरदायित्व मानते थे। वे जनता के करों से विश्वविद्यालय चलाने के पक्ष में न थे। विश्वविद्यालयों को केवल परीक्षण संस्थायें होना चाहिए जो अपने प्राप्त शुल्क पर स्वावलंबी बनें। उनका पक्का विश्वास था कि कला विषयों को पढ़ाना नितांत अपव्यय है, क्योंकि इससे शिक्षित वर्ग में बेकारी बढ़ती है और यह छात्रों के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को भी नष्ट करते हैं। ''समस्त व्यावसायिक शिक्षा को वे राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप करना चाहते थे और उसका उत्तरदायित्व औद्योगिक संस्थानों पर डालना चाहते थे, जो अपनी आवश्यकताओं के अनुसार व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। टाटा को अपने लिए यांत्रिकों का प्रशिक्षण करना चाहिए, बिरला को अपने कामगारों को प्रशिक्षित बनाना चाहिए। अस्पतालों को अनुदान प्राप्तकर डॉक्टरों की शिक्षा देनी होगी और बड़े बड़े फार्मों को कृषि शिक्षा का भार लेना होगा। सैद्धान्तिक परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने के बाद क्षेत्रीय अनुभव देने की वर्तमान पद्धति उन्हें मान्य न थी। वे अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने पर बल देते थे। उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में पढ़ाना उन्हें पसंद न था, क्योंकि विदेशी शिक्षा प्राप्त कर लेने पर नवयुवक देशीय आवश्यकताओं के काबिल नहीं रहते।

गांधीजी के ऐसे विचारों के कारण कभी–कभी लोग उन्हें वैज्ञानिक शिक्षा का विरोधी कह बैठते हैं। किन्तु यह असत्य हैं, क्योंकि उन्होंने कहा कि ''मैं विभिन्न विज्ञानों की शिक्षा की महता को मानता हूं। मगर हमारे बच्चों को भौतिकी और रसायन के ज्ञान की अति नहीं करना चाहिए। हम खर्चीली प्रयोगशालाएं और ऊंचे भव्य भवन बनवाने की हैसियत में नहीं हैं। हमें सुगमता से देश में प्राप्य यंत्रों और औज़ारों से ही काम चलाना होगा। मेरी योजना के अन्तर्गत अधिक अच्छे पुस्तकालय, उत्तम प्रयोगशालाएं तथा उच्च अनुसंधानालय होंगे। इनमें ऐसे वैज्ञानिक, यांत्रिक और विशेषज्ञ काम करेंगे जो दूसरों की नकल न करके वास्तविक सच्ची शोध करेंगे जिसका राष्ट्रीय आवश्यकताओं से सीधा संबंध होगा।

उनका स्पष्ट मत था कि ''विश्वविद्यालयों को शानदार इमारतों और सोने चांदी के भण्डारों की कभी आवध्यकता नहीं है। उसे तो सुबुद्ध जनता की सद्भावना और सजग अध्यापकों की कार्यशीलता चाहिए, जो सत्य की खोज में निरन्तर लगे रहें। उनका उद्देश्य भारत की विभिन्न संस्कृतियों का सामंजस्यीकरण और संश्लेषण करके राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाता है।

---

**साभार**– गांधी शताब्दी स्मारक ग्रंथ से।

# बच्चों ने बनाया नक्शा

★ शहनाज़ डी.के.

पर्यावरण की पुस्तक में बच्चे हमेशा भारत का नक्शा देखते थे। धीरे–धीरे वे भारत में राज्यों की स्थिति और राजधानियां पहचानने लगे। फिर उन्होंने कक्षा–पुस्तकालय में एटलस का उपयोग करना शुरू किया। वे एटलस में कई तरह के खेल भी खेलते थे, जिसमें उन्हें पूछे गए स्थान को ढूढ़ना बहुत अच्छा लगता था। इस तरह वे एलटस में कई स्थानों से परिचित हो गए। जब वे किसी पाठ में किसी भी शहर के बारे में पढ़ते हैं तो तुरन्त उन्हें नक्शे में ढूढ़ना शुरू कर देते हैं। अब नक्शे पढ़ना उनके लिए एक रोचक गतिविधि हो गई और वे अपने खाली समय में अन्य किताबों के साथ नक्शे देखने का काम अक्सर करने लगे।

कक्षा पांच के बच्चों ने पर्यावरण में गोलकोंडा के किले के बारे में पढ़ा। उन्होंने नक्शे में गोलकोंडा ढूढ़ना शुरू कर दिया। परन्तु जब उन्होंने गोलकोंडा के किले का नक्शा देखा तो वे इसमें कुछ संकेत समझ नहीं पाए लेकिन उन्होंने नक्शा पढ़कर समझने का प्रयास किया और वे सफल रहे। अब बात आई नक्शा बनाने की। मैंने उनसे कहा कि तुम दिशाओं के बारे में पढ़ चुके हो इसलिए अब इस नक्शे के आधार पर तुम सब अपने विद्यालय का नक्शा बनाओ, जिसमें अपने परिसर की सभी चीज़ों को बगीचे, भवन, सड़क, नहर, मैदान आदि अलग–अलग संकेत से दर्शाना है। बच्चों को मज़ा आ गया, क्योंकि कक्षा से बाहर जाकर काम करना बच्चों के लिए आनन्ददायक होता है। उन्होंने तय किया कि हम सब बीच वाले भवन की छत पर चढ़कर सभी चीज़ों की स्थिति देखेगें फिर नक्शे में बनाएंगे। सब बच्चे छत पर चढ़ गए उन्होंने पूरे परिसर की स्थिति को ध्यान से देखा और नक्शा बनाना शुरू किया। बच्चों ने सारी चीज़ों को भलीभांति नक्शे पर दर्शाया परन्तु जब वापस कक्षा में आकर उन्होंने अपने नक्शे एक–दूसरे के साथ मिलाए तो उन्हें बड़ा अटपटा लगा कि किसी ने नहर गलत जगह बना दी तो किसी ने झूले की स्थिति गलत बनाई है। कोई कह रहा है, मेरा सही है तो उसका साथी कह रहा है नहीं मेरा सही है। सब मेरे पास इकट्ठे हो गए कि मैड़म बताऐंगे किसका सही है मैंने उनसे कहा कि जब तुमने अपनी कक्षा का नक्शा बनाया था तो तुम्हीं लोगों ने मिलकर ठीक किया था और गलतियां सुधारी थी तो अब इसे भी सब मिलकर अपने–अपने समूह में इसे सही करो। परन्तु एक बात का ध्यान रखना कि जब कोई अनजान व्यक्ति ये नक्शा देखे तो वह स्कूल की स्थिति को समझ पाए।

कुछ बच्चों ने कहा मैड़म कक्षा के नक्शे में तो केवल आगे–पीछे ही सही करना था पर इसे नक्शे में तो सब इधर–उधर हो गया है। तो फिर मैंने सोचा एक बार वापस चर्चा करने की जरूरत है। मैंने बच्चों से पूछा, चलिए हम पहले नक्शे में कौनसी दिशा तय करें, सबने अलग–अलग जवाब दिए लेकिन कुछ ही देर में सब उत्तर दिश पर सहमत हो गए सबने

★ विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में कार्यरत हैं।

अपनी फाइल में उत्तर दिशा सबसे ऊपर लिख ली फिर उन्होंने ये तय किया कि विद्यालय में कौनसा भवन उत्तर की तरफ है और सबसे पहले उसे बना दिया, अब इस भवन के पूर्व में क्या है? और पश्चिम में क्या है? ये देखते गए और सारी चीज़ों के संकेत बनाते गए। अब धीरे–धीरे वे सब एक–दूसरे से मिलाते हुए नक्शा बना रहे थे और सबका नक्शा एक जैसा बनता जा रहा था और वे मुझे भी बता रहे थे कि इस तरफ क्या बनाना है? इसके बाद सभी ने एक–दूसरे से ग्रुप में पूछा कि बगीचे के पूर्व में क्या बनाया है और नहर के पश्चिम में या दक्षिण में क्या है? तब सभी ने कहा कि अब नक्शा सही बना है और फिर उन्होंने अपने–अपने संकेत भी नीचे लिखे और उन स्थानों के नाम भी संकेत के सामने लिखे। इतना सब करने के बाद वे इस निश्चय पर पहुंचे कि कोई भी नक्शा, कोई भी व्यक्ति पढ़े, पर सभी उसे दिशाओं के आधार पर समझते हैं और उससे सही स्थान पर पहुंच सकते हैं। अब वे केवल नक्शा पढ़ने की ही नहीं, नक्शा बनाने की कला भी काफी हद तक समझने लगे हैं।

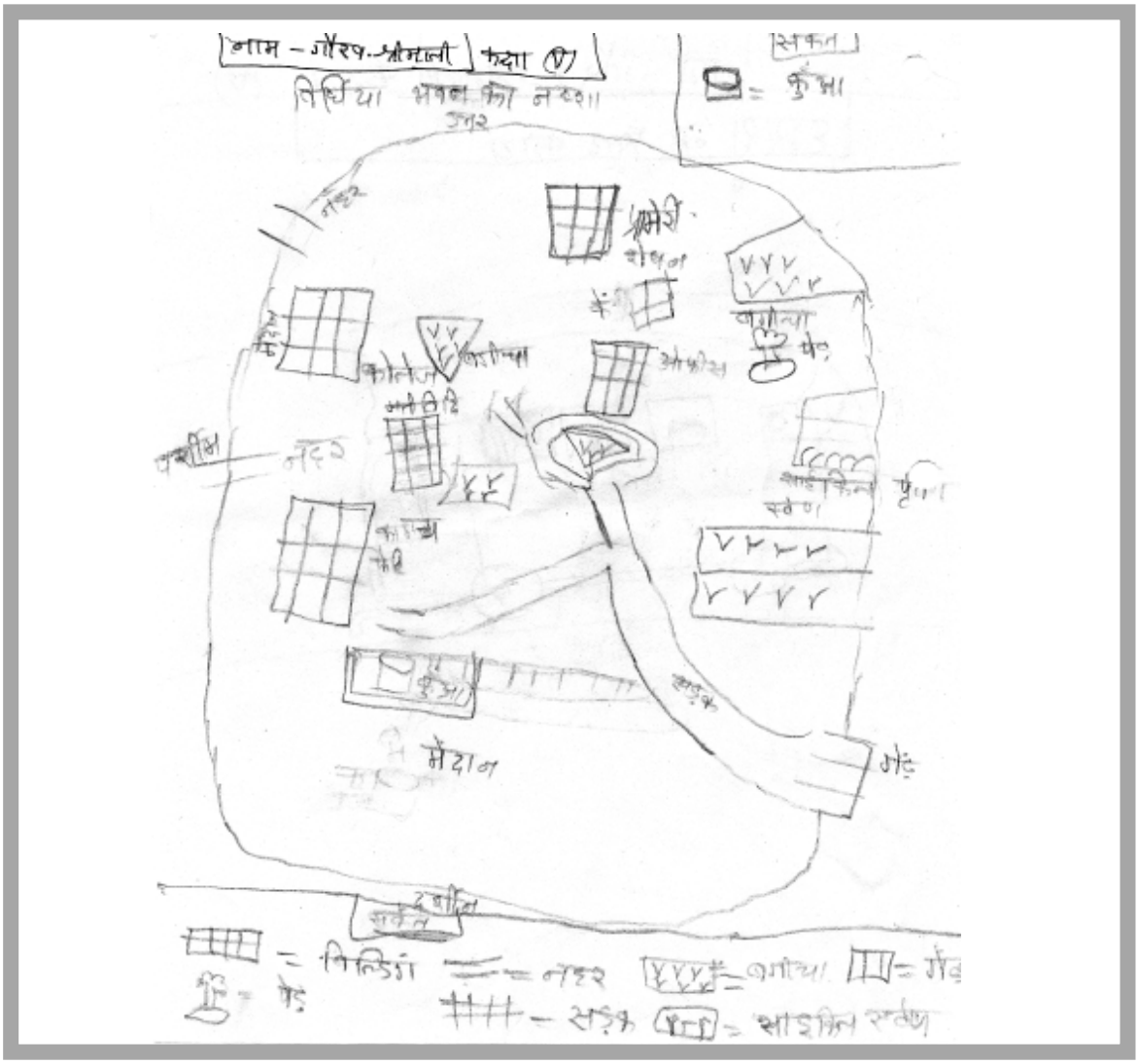

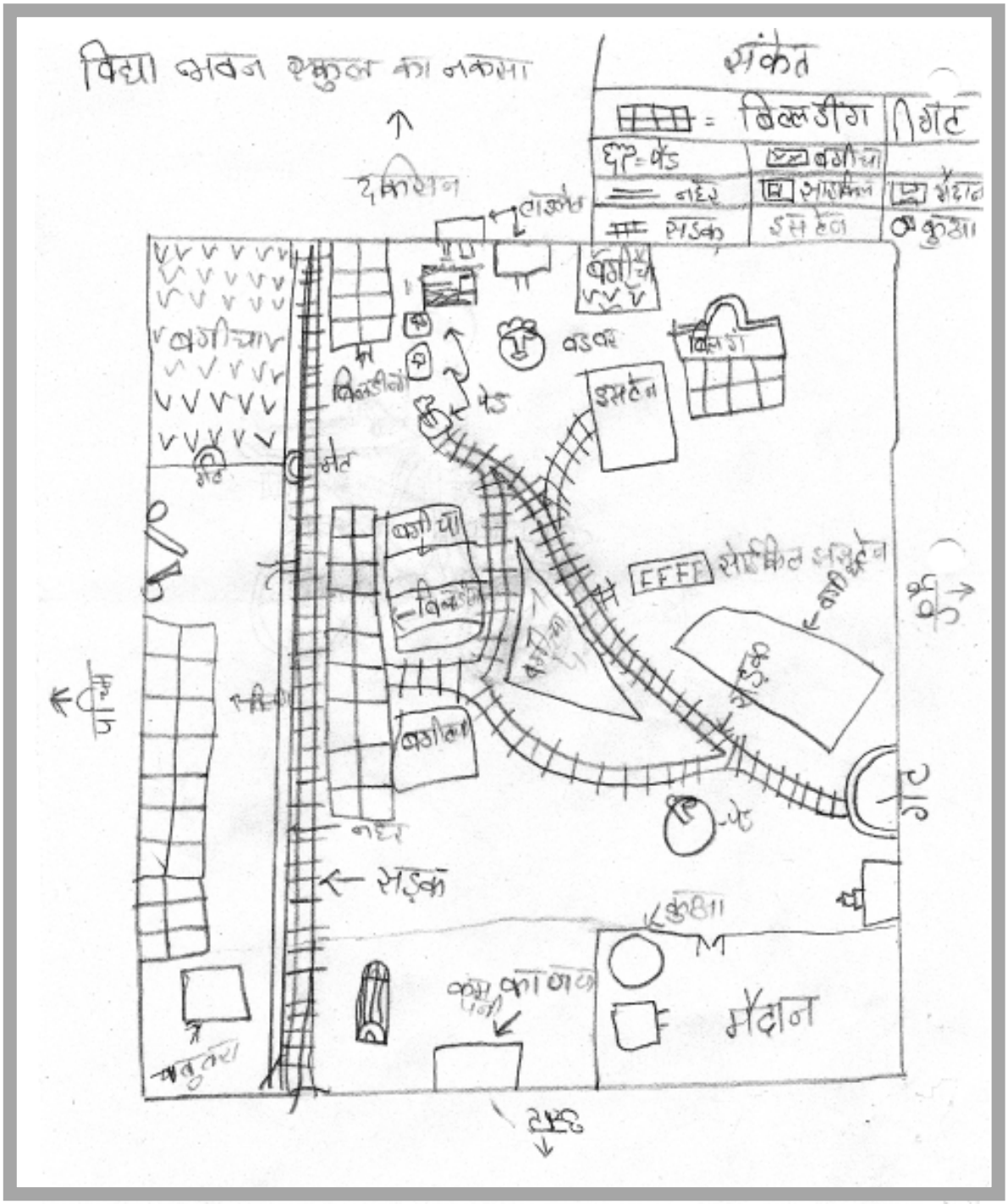

संकेत
बिल्डींग
गेट
पेड
बगीचा
नहर
सड़क
मैदान

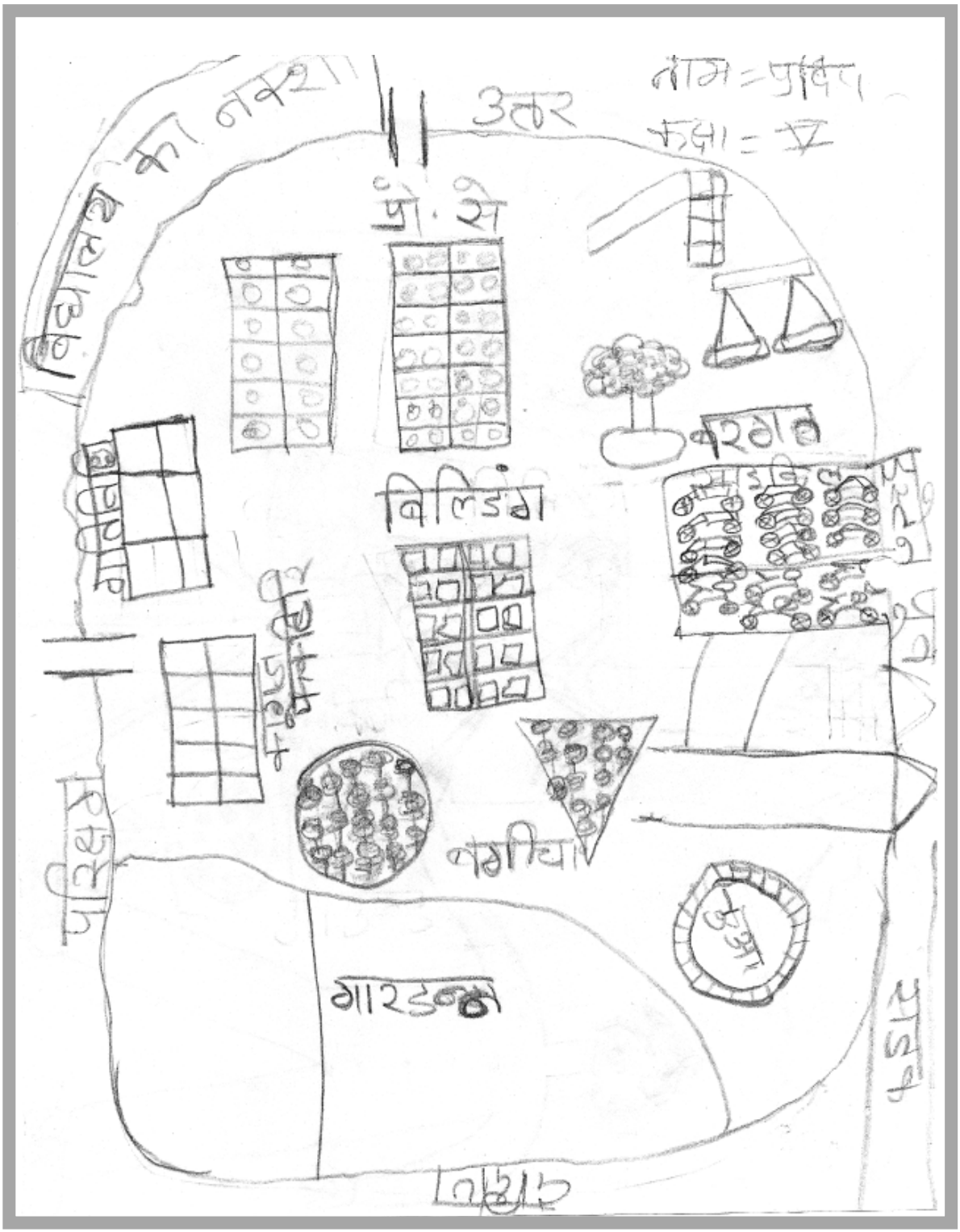

विद्यालय का नक्शा
उत्तर
बिल्डिंग
बगीचा
पश्चिम

# बुनियादी शिक्षा : विज्ञान और आध्यात्म में समन्वय

★ दयाल चंद्र सोनी

बुनियादी शिक्षा की योजना कुछ ऐसी विचित्र है कि उससे न तो भौतिकवादी संतुष्ट प्रतीत होते हैं और न अध्यात्मवादी या धर्मोत्साही लोग ही। आधुनिक विज्ञान के चमत्कारों से प्रभावित भौतिकवादियों को बुनियादी शिक्षा में फ़कीरी, मुफ़लिसी, सभ्यता के विकास के प्रति शत्रुता या गंवारपन दिखाई देता है। आज जबकि दुनिया स्पुतनिक के युग में जी रही है और विज्ञान की सहायता से पलभर में अधिक से अधिक उत्पादन हो जाता है, जो कि हाथ के काम की तुलना में न केवल सुंदर और मज़बूत होता है, बल्कि जिससे श्रम और समय की भी बहुत बचत होती है, तब ये बुनियादी शिक्षावाले बाबा आदम के जमाने की तकली और मध्ययुगीन चरखे की बात करते हैं। जमाना तो आगे बढ़ रहा है, जिसे रोका नहीं जा सकता है और न रोका जाना चाहिए और ये लोग अपनी सनक में आकर जमाने की घड़ी की सुई को पीछे ढकेलना चाहते हैं। भौतिक–वादियों का यह भी आक्षेप है कि आज दुनिया की आबादी की विशाल आवश्यकताओं को केवल विज्ञान से और भीमकाय केन्द्रित उद्योगों से ही पूरा किया जा सकता है। बुनियादी तालीमवाले इस बात को न समझकर हाथ के काम और विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों के पीछे पड़े हुए हैं।

दूसरी ओर जो अध्यात्मवादी और धर्मोत्साही हैं, उनका कहना है कि बुनियादी शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की उपेक्षा की गयी है और उद्योग और कमाई पर बल देकर एक भौतिकवादी शिक्षा की योजना की गयी है। उनका कहना कि आज समाज को धर्म की शिक्षा की आवश्यकता है। आज की दुनिया भौतिकवाद के जाल में फंसकर आत्मनाश की ओर बढ़ रही है और यदि दुनिया नाश से बची भी रही, तो भी आधुनिक विज्ञान और भौतिकवाद की दौड़ ने मनुष्य की उसके चित्त की शांति को हर लिया है और मनुष्य बड़ा बेचैन हो गया है। उनका कहना है कि विज्ञान के द्वारा हम वस्तुओं का उत्पादन चाहे जितना बढ़ा दें, पर जब तक धर्म और अध्यात्मक की शिक्षा द्वारा मनुष्य इस सत्य को नहीं देखता कि मानव–जीवन का मतलब केवल भौतिक आवश्यकताओं की वृद्धि नहीं है, बल्कि मनुष्य के जीवन में नैतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएं भी हैं, जिनकी पूर्ति हुए बिना मनुष्य को शांति नहीं मिल सकती, तब तक दुनिया सही मार्ग पर नहीं आ

**भौतिक–वादियों का यह भी आक्षेप है कि आज दुनिया की आबादी की विशाल आवश्यकताओं को केवल विज्ञान से और भीमकाय केन्द्रित उद्योगों से ही पूरा किया जा सकता है। बुनियादी तालीमवाले इस बात को न समझकर हाथ के काम और विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों के पीछे पड़े हुए हैं।**

★ स्व. श्री दयाल चन्द्र सोनी, 1941 में विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक थे।

सकती और न उसे विनाश से बचाया जा सकता है। धर्मोत्साहियों का कहना है कि धर्म के अभाव में मनुष्य की नीयत बिगड़ती चली गयी और सुख के बजाय दुःख की वृद्धि हुई। अतः पहले मनुष्य सुधरना चाहिए। मनुष्य को सुधारो, तो सब कुछ ठीक होगा और यदि मनुष्य नहीं सुधरा, तो सारा सुधार मटियामेट हो जाएगा। फिर धर्मोत्साहियों का कहना है कि मनुष्य को सुधारने में भौतिकवाद के

आज देश में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हमारी पंचवर्षीय योजनाएं आर्थिक समृद्धि लाने का प्रयत्न कर रही हैं। पर अव्वल तो नैतिकता के अभाव में योजना का अत्यधिक रूपया बरबाद हो जाता है या लोगों की जेबें गरम करने में काम आता है और विभिन्न महकमों या विभागों में काम करने वाले तथा विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोग इतने भ्रष्ट हैं कि आर्थिक समृद्धि की योजनाओं का लाभ तो जनता को मिल नहीं पाता, पर बढ़े हुए करों को भार अवश्य ही जनता की कमर तोड़ता चल जाता है। भ्रष्टाचार की मोर्चाबंदी समाज में इतनी मजबूत और सारे कामों पर इतनी अधिक हावी है कि आज लोगों में यह साहस नहीं है कि उससे टक्कर लें। सड़कें बन रही हैं, रेलें बन रही हैं, बांध बंध रहे हैं, अस्पताल खुल रहे हैं, स्कूल और कॉलेज खुल रहे हैं, उत्पादन बढ़ रहा है, आज़ादी मिल चुकी है, पर क्या लोग सुखी और संतुष्ट हैं? क्या जनता इस बात की तारीफ़ करती है कि समाज में सत्य और न्याय की वृद्धि हुई है? नहीं, जनता बहुत ही निराश

बजाय धर्म पर ही जोर देना होगा। बुनियादी शिक्षा में धर्म पर कोई बल इन लोगों को नहीं दिखाई देता और इसलिए ये लोग बुनियादी शिक्षा से निराश हैं। उनका कहना है कि राष्ट्र की सांप्रदायिक स्थिति के कारण हमारा राज्य तो धर्मनिरपेक्ष हो ही गया है, पर अब तो शिक्षा में से भी धर्म का लोप हो चुका है और इसलिए भविष्य अंधकार से पूर्ण ही है।

## परस्पर–विरोधी आरोपों का मूल्यांकन

यदि विज्ञान के समर्थक और भौतिकवादी लोग बुनियादी शिक्षा पर किया जानेवाला धर्मवादियों का आक्षेप देखें और यदि धर्मवादी लोग यह देखें कि बुनियादी शिक्षा पर विज्ञानवादियों और भौतिकवादियों का कैसा आक्षेप है, तो शायद दोनों ही पक्ष बुनियादी शिक्षा को ठीक तरह समझने में सुविधा अनुभव करें। वास्तविकता यह है कि बुनियादी शिक्षा या गांधीजी का विचार विज्ञान और धर्म दोनों ही की उपेक्षा नहीं करता। मनुष्य न तो विज्ञान के बिना जी सकता है और न धर्म के बिना ही उसका निर्वाह हो सकता है। यह सोचना गलत है कि विज्ञान कुछ आज के युग की ही देन या आज के युग की ही विशेषता है। लाखों वर्ष पूर्व जब मनुष्य ने अपने हथौड़े या कुल्हाड़े में बेंट लगाया वो वह भी विज्ञान ही था, पहिये का आविष्कार करके जब मनुष्य ने गाड़ी बनायी और कुम्हार का चाक बनाया, तो यह भी विज्ञान ही था। वास्तव में विज्ञान के सहारे ही मनुष्य जी रहा है और विज्ञान के सहारे ही मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति टिकी हुई है। फिर भौतिकवाद भी कोई बुरी चीज़ नहीं। भौतिक समृद्धि के बिना धर्म का भी लोप हो जायगा। अकाल के दिनों में जब लोग भूखों मरते हैं, तो सभ्यता, संस्कृति और धर्म अधिकतर ताक पर धरे रह जाते हैं और 'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति' का सिद्धान्त काम में लेकर अमर्यादित व्यवहार ही चलने लगता है। आज भी हमारा सारा जीवन प्रतिपल विज्ञान के सहारे ही चल रहा है। विज्ञान की कितनी भी निन्दा क्यों न की जाय, पर विज्ञान के बिना जीना किसी के लिए संभव नहीं है और यही हाल भौतिकता का है। भौतिकता की निन्दा करना जितना आसान है, उतना आसान भौतिकता से बचना नहीं है। कम से कम गांधीजी, जो गरीबी को तथा गरीबी के अभिशाप को भली प्रकार समझते थे, यह गलती नहीं कर सकते थे कि भौतिकता को भूल जाते या उसे कम महत्व देते। उन्होंने हमेशा यह कहा कि भारत के आधे भूखे और आधे नंगे गरीबों के सामने रोटी के सिवा किसी अन्य विषय की बात करना बहुत अनुचित है। अतः बुनियादी शिक्षा में रोटी और कपड़े की समस्या को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। इसके साथ ही गांधीजी ने यह कहा कि बुनियादी शालाओं में जो भी उद्योग हो, वह बुद्धि को काम में लेते हुए और 'क्यों' तथा 'कैसे' के प्रश्नों को

**भौतिकता की निन्दा करना जितना आसान है, उतना आसान भौतिकता से बचना नहीं है। कम से कम गांधीजी, जो गरीबी को तथा गरीबी के अभिशाप को भली प्रकार समझते थे। यह गलती नहीं कर सकते थे कि भौतिकता को भूल जाते या उसे कम महत्व देते। उन्होंने हमेशा यह कहा कि भारत के आधे भूखे और आधे नंगे गरीबों के सामने रोटी के सिवा किसी अन्य विषय की बात करना बहुत अनुचित है। अतः बुनियादी शिक्षा में रोटी और कपड़े की समस्या को अत्यधिक महत्व प्राप्त है।**

समझते हुए किया जाय। इसी को दूसरे शब्दों में विज्ञान कहा जाता है। कम से कम परंपरित शिक्षा के हिमायतियों को तो यह शिकायत नहीं करनी चाहिए कि बुनियादी शिक्षा में भौतिकवाद या विज्ञानवाद कम है, क्योंकि परंपरित शिक्षा में न तो रोटी और कपड़े या अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर कोई ध्यान था और न इस बात का कोई ख्याल था कि विद्यार्थी वास्तव में कुछ काम करें और उस काम को बुद्धिपूर्वक करें, ताकि वह काम वैज्ञानिक काम बन जाय। पाश्चात्य देशों ने विज्ञान में जो उन्नति की, उसका कारण यह था कि पाश्चात्य देशों में हाथ से काम से घृणा नहीं की गयी और हाथ के काम को बुद्धिपूर्वक किया जाता रहा। भारत में हाथ के काम से नफ़रत की गयी और उसे बुद्धिपूर्वक करने की नौबत नहीं आयी। इसी वजह से भारत विज्ञान में पिछड़ गया। बुनियादी शिक्षा के प्रति कोई यह शिकायत तो नहीं कर सकता कि इस शिक्षा में विज्ञान की शिक्षा को कोई स्थान नहीं है या इसमें भौतिकवाद की उपेक्षा है। हां, यह बात अवश्य कही जा सकती है कि बुनियादी शिक्षा ने या गांधी–विचार ने उद्योगों के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। पर केवल इस वजह से तो बुनियादी शिक्षा को विज्ञान विरोधी और परंपरित शिक्षा को विज्ञान–समर्थक नहीं माना जा सकता।

अब रही धार्मिक शिक्षा की बात। इसमें भी कोई दो–राय नहीं हो सकती कि भौतिक समृद्धि पर एकांगी ध्यान देने से व्यक्ति अथवा समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। मनुष्य–समाज में जो समाजत्व है, उसका मूल आधार तो धर्म ही है। धर्म यदि न होता, तो मनुष्य, मनुष्य न होकर पशुतुल्य ही जीवन बिताता। फिर आज की दशा को देखते हुए तो यही कहा जा सकता है कि विज्ञान की उन्नति में धर्म की उन्नति पिछड़ गयी है और यही कारण है कि दुनिया में इतना दुःख आज भी मौजूद है। जितनी उन्नति विज्ञान ने की है, उतनी ही उन्नति यदि मानव–समाज ने धर्म के क्षेत्र में भी की होती, तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन चुकी होती। इसलिए धर्म की की उन्नति और धर्म की शिक्षा अत्यावश्यक है। पर बुनियादी शिक्षा में बुनियादी विज्ञान की शिक्षा की गुंजाइश जितनी स्पष्ट है, धर्म की शिक्षा की गुंजाइश उसमें उतनी ही होते हुए भी ऊपर से स्पष्ट नहीं है और इस कारण से धर्मोत्साहियों को यह शिकायत रहती है कि बुनियादी शिक्षा में धर्म की शिक्षा का कोई स्थान नहीं। परन्तु यदि बुनियादी शिक्षा के विचार को ध्यान में रखा जाए, तो उसमें यह पाया जायगा कि बुनियादी शिक्षा सबसे बढ़कर इस बात का प्रयत्न है कि शिक्षा में मानवता और धर्म की स्थापना की जाय और वह भी इसलिए नहीं कि केवल शिक्षा में धर्म की मानवता की स्थापना हो, बल्कि इसलिए कि मनुष्य के सारे जीवन में और सारे समाज में धर्म की स्थापना हो। यदि वास्तव में देखा जाय, तो बुनियादी शिक्षा को प्रच्छन्न धार्मिक शिक्षा कहना सर्वथा उपयुक्त होगा। गांधीजी जैसे धर्मप्राण व्यक्ति द्वारा जिस शिक्षा–योजना का प्रवर्तन हो, उसमें धर्म का तत्व बाहर रह जाय, यह असंभव है। पर असल बात यह है कि न केवल विज्ञान, बल्कि धर्म के विषय में भी लोगों के विचार और बोध सही नहीं है और इसी कारण विज्ञान भौतिकवादियों को बुनियादी शिक्षा में विज्ञान और भौतिकवाद का अभाव दिखाई देता है। जो धर्म और अध्यात्म को शिक्षा और समाज में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, उनको बुनियादी शिक्षा में धर्म और अध्यात्म की कमी नज़र आती है। अतः आवश्यक है कि विज्ञान और धर्म के विषय में हमारे विचार और बोधों को सही किया जाए। ..... **क्रमशः अगले अंक में**

**साभार**– बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे?

**गतिविधि**

# पेड़ों को कैसे देखें?

हमारे आसपास जो बड़े–बड़े पेड़ हम देखते हैं, इनमें एक कड़क लकड़ी का तना होता है, जो ऊपर जाकर पहले डालियों में बंट जाता है। फिर आगे ये डालियां टहनियों में बंट जाती हैं, जिनमें पत्तियां लगती हैं। बाहर जाकर एक–एक बड़ा पेड़ चुन लो। उसका चित्र बनाकर अपनी कॉपी में नाम लिख लो। फिर उस पेड़ के बारे में नीचे दी गई बात पता करो और लिखो।

पूरा पेड़ या पेड़ का शीर्ष या सबसे ऊपरवाला हिस्सा नुकीला है? क्या वह गोलाई लिए हुए है या फैला हुआ? जैसा कि चित्र में बताया है।

क्या डालियां सीधी हैं, झुकी हुई हैं या मुड़ी–तुड़ी?

क्या पेड़ का तना बंट जाता है?

उसकी छाल कैसी है? उसका रंग क्या है?

वह छूने पर कैसा महसूस होता है?

क्या पत्ते टहनियों के दोनों ओर एक–एक करके जमे हैं या जोड़ियों में?

पत्ते कितने बड़े हैं?

क्या पेड़ पतझड़ी हैं या सदाबहार? मतलब क्या पतझड़ के मौसम में पत्ते झड़ जाते हैं या पेड़ हमेशा हरा–भरा रहता है?

फूल किस मौसम में खिलते हैं?

फूलों की बनावट कैसी है?

कितनी पंखुड़ियां हैं? रंग क्या हैं?

सुगंधित है या नहीं?

---

**साभार– 'कुछ करें'** विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर का प्रकाशन।

# स्कूल लाइब्रेरी एवं रीडिंग पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार
# का
# दस्तावेज़

मूल्य : एक सौ पचास रुपए

(हिन्दी में भी शीघ्र प्रकाश्य)

संपर्क करें :

**विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र**

फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग

उदयपुर (राज.) 313 004

फोन : (0294) 2451487

Email : vbsedr@yahoo.com

# विद्या भवन में बुनियादी शिक्षा

## कुछ झलकियां